मालती-माला

(कहानियों का संग्रह)

लेखिका
कुमारी मालती शर्मा

प्रकाशक
"साक्षरता-संघ," काशी
१९३८
मूल्य आठ आने

प्रकाशक—
"साक्षरता-संघ,"
काशी

मुद्रक—
अपूर्वकृष्ण बोस,
इण्डियन प्रेस, लिमिटेड,
बनारस-ब्रांच ।

पण्डित रामनारायण मिश्र (काशी)

समर्पण

राष्ट्रभाषा

हिंदी के अनन्य सेवक तथा समुन्नायक,

सुप्रसिद्ध शिक्षा-प्रसारक एवं

समाज-सुधारक

अपने पूज्य मातामह

श्रीमान् पं० रामनारायणजी मिश्र, बी० ए०,

की

सेवा में

सादर समर्पित

दो शब्द

इस संग्रह की कहानियाँ हृदय को स्पर्श करनेवाली तथा मन के मधुर भावों में बल लानेवाली हैं। चलती हुई भाषा और निखरे हुए विचारों का सौंदर्य इस बात का सहज ही विश्वास दिला रहा है कि लेखिका आगे चलकर अपनी स्वाभाविक प्रतिभा को और भी अधिक समुज्ज्वल बनाने में समर्थ होगी।

कहानियाँ केवल दिलबहलाव की चीज नहीं हुआ करतीं। उनमें जीवन को सुदृढ़, शिक्षामय तथा उपयोगी बनाने की भी क्षमता होनी चाहिए। सहर्ष स्वीकार करना पड़ता है कि इन कहानियों में इस क्षमता का अभाव नहीं है। प्रत्येक कहानी जीवन के किसी न किसी आदर्श को लेकर चलती है और उसके विकसित रूप को चित्रित करने में बहुत कुछ समर्थ भी सिद्ध होती है। कहानी पढ़ने के बाद पाठक का दिल किसी अनजानी चीज से टकराता-सा दीख पड़ता है और वही टकराहट कहानी की जान है, वही लेखिका की सफलता है।

इसमें संदेह नहीं कि ऊँचे आदर्शवाद ने वास्तविकता को कहीं कहीं कुछ विकृत बना दिया है किंतु उसका वह विकृत रूप अस्वाभाविक ही भर समझा जा सकता है, अमांगलिक नहीं। इस प्रकार की त्रुटियाँ मनोवैज्ञानिक अनुभव से संबंध रखती हैं और ऐसे अनुभवों के लिये लेखिका का यह प्रथम प्रयास सर्वथा क्षम्य है। कहानियाँ, सब मिलाकर, अच्छी हैं और, मैं समझता हूँ, बड़े चाव से पढ़ी जायँगी।

जनार्दनप्रसाद झा, 'द्विज'

इस पुस्तक में १५ कहानियाँ हैं जिनमें से तीन "सती" नामक मासिक पत्र में छप चुकी हैं और एक 'वीणा' पत्र में।

सूचीपत्र

कहानी पृष्ठ

माँ

"बेटी, तुम कहाँ रहती हो ?"

"अम्मा के पास।"

"यहाँ सड़क पर अकेली क्यों घूम रही हो ?"

"भैया ने मारा था।"

"अब जाती कहाँ हो ?"

"बाबूजी से कहने।"

"बाबूजी कहाँ हैं ?"

"बाहर।"

मिर्जा इकबाल ने बालिका को गोद में उठा लिया। बालिका की उमर केवल पाँच वर्ष की होगी। वह अपना पता-ठिकाना बतलाने में असमर्थ थी। मिर्जाजी सोचने लगे—अवश्य ही यह बालिका मौक़ा पाकर, किवाड़ा खुला रहने पर, घर से निकल आई है और अब भटक रही है।

"यह तुम्हारे पास क्या है ?"

"गुड़िया" बालिका ने पुलकित होकर उत्तर दिया।

"तुम्हारा घर कहाँ है ? हमें ले चलो"। बालिका ने सामने की ओर उँगली उठाई "वहाँ।" मिर्जाजी उसकी बतलाई जगह पर पहुँचे और फिर पूछा "कहाँ है ?" बालिका ने दूसरी दिशा की ओर उँगली उठाकर कहा "वहाँ।" मिर्जाजी असमंजस में पड़ गए। बालिका बिलकुल नादान थी। मिर्जाजी ने बालिका को हृदय से लगा लिया और पूछा "तुम्हारा नाम क्या है बेटी ?"

"मुन्नी।"

संतानहीन मिर्जाजी बालिका को घर ले आए। चारों ओर बालिका के माँ-बाप की खोज करने लगे पर कोई फल न निकला। इलाहाबाद जैसे शहर में एक भटकी हुई बालिका को उसके माँ-बाप तक पहुँचा देना आसान काम न था। रात को थके मिर्जाजी घर लौटे, बालिका जोर-जोर से पुकार रही थी—अम्माँ—अम्माँ। बालिका को बड़े प्रेम से गोद में उठाकर मिर्जाजी चुप कराने लगे।

घर में केवल मिर्जाजी की माँ ही थी। उनकी बीबी को मरे करीब दो वर्ष हो चुके थे। मिर्जाजी की अवस्था इस समय पैंतालिस वर्ष के लगभग होगी, आपकी गिनती शहर के रईस और शरीफ मुसलमानों में थी। बीबी के मरने के बाद से वे कुछ विरक्त से रहने लगे थे पर उनके हृदय में एक शिशु के लिये प्यार उमड़ा करता था। इस

बालिका को पाकर उन्हें ऐसा लगा मानों उनके ऊपर यह खुदा की मेहरबानी है।

"अम्माँ पास चलेंगे—" बालिका रो रोकर कह रही थी। इतने बड़े मिर्जाजी बालिका का रोना सुनकर खुद रो पड़ते और बहलाकर कहते—"अभी चलते हैं बेटी।" बालिका सुन्दर थी, रोते रोते उसकी आँखें फूल आई थीं ज्यों ज्यों रात बढ़ने लगी, बालिका का क्रन्दन भी बढ़ता गया। मिर्जाजी और उनकी माँ दोनों ही परेशान हो गए। मिर्जाजी सोचने लगे—"क्या ही अच्छा हो अगर खुदा उन्हें इस समय इस बालिका की माँ बना दे।" वह तरह-तरह से बालिका को चुप कराने लगे। अन्त में रोते रोते हारकर बालिका सो गई। मिर्जाजी ने सारी रात उसकी खाट के पास बैठकर बिता दी। वे पतले पतले ओंठ नींद में भी रुदन-कम्पित हो रहे थे। सबेरा हुआ। बालिका ने पुनः रट लगाई—"अम्माँ पास चलें...गे..." मिर्जाजी उसे बहलाते हुए बोले "अभी चलते हैं बेटी।"

दिन बीतने लगे, नन्हीं-सी बालिका कहती "अम्माँ पास ले चलो" मिर्जाजी हृदय से चिपकाते हुए कहते "अभी चलते हैं बेटी" पर बालिका के लिये वह 'अभी' न आया। मिर्जा-जी ने नाम रक्खा "महमूदा।"

× × × ×

नवलकिशोर घर लौटे और चिन्तित से कुर्सी पर बैठते हुए बोले—"लड़की का कोई पता नहीं लग रहा है।" वेदमती "बेटी मुन्नी—बेटी" कहकर जोर जोर से चीखने लगी और लड़की का सुन्दर चेहरा बार बार उसकी आँखों के आगे घूमने लगा। पड़ोस की स्त्रियाँ भी सदा सांत्वना देने के लिये वेदमती के पास आया करतीं पर वह चुपचाप उदासी में डूबी-सी सारा दिन सोचा करती—कोई पकड़ ले गया होगा—चार चार सोने की चूड़ियाँ भी पहिने थी—फिर सोचती—अवश्य ही मेरी बच्ची को किसी ने मार डाला। उठते-बैठते नवलकिशोर डाँटते "कम्बख्त और गहने पहिना।" फिर कहते—बड़ी लापरवाह औरत है। अभी एक ही लड़की थी, उसका भी ख्याल न रख सकी, अगर दो-तीन और होतीं तो न जाने उनका क्या होता ?

गृहिणी बेचारी चुपचाप सब डाँट-फटकार सहती। विनोद स्कूल छोड़कर सारा दिन साइकिल पर चढ़ा इधर-उधर बहिन की खोज किया करता पर सब असफल। कितने ही दिन बीत गए, पिछली बातें भूलने लगीं पर बालिका का वह सुन्दर मुखड़ा तीनों प्राणियों में से कोई भी न भूल सका।

× × × ×

मिर्जाजी के लाड़-प्यार में पलकर महमूदा अब तेरह वर्ष की हो चुकी थी। वह बचपन ही से गम्भीर स्वभाव की थी। दिन-प्रतिदिन उमर के साथ साथ उसकी गंभीरता

भी बढ़ती गई। मिर्जाजी ने मन लगा रहने के लिये महमूदा की पढ़ाई का भी उचित प्रबन्ध कर दिया था। वे उसकी तीव्र बुद्धि और जबान से शुद्ध हिंदी सुनकर आश्चर्य-चकित से रहते, फिर धीरे धीरे वह महमूदा के सिर पर हाथ फेरते, आशीर्वाद देते और हृदय से लगाते। वे महमूदा को बहुत प्यार करते थे और अपने को महमूदा के बाप-माँ दोनों ही की जगह समझते थे। वह उन दिनों की याद करते जब छोटी सी बालिका अम्माँ अम्माँ करके रोती थी, उस कोमल अवस्था से लेकर उन्होंने अपने हाथों से उसे इतना बड़ा किया है। मिर्जाजी महमूदा को खुदा की देन समझते थे। वे उसे प्यार करते, डाँटते और साथ ही उसकी इज्जत भी करते थे। पर पता नहीं क्यों, भीतर ही भीतर उससे डरते भी थे।

महमूदा जब कभी अपनी सहेलियों के घर जाने का नाम लेती तो वे उस समय कुछ हिचकते। शायद वे उसे दुनिया की नजरों से छिपाकर रखना चाहते थे।

महमूदा के लिये तो माँ-बाप की स्मृति केवल स्वप्नवत् थी। उसने जब से होश सँभाला तब से केवल मिर्जाजी को ही पाया। उनके बाद उसने उनकी माँ को प्यार किया। रात को जब सब सो जाते तब कभी कभी महमूदा बिस्तरे पर पड़ी पड़ी सोचा करती—अगर मेरी माँ मुझे मिल जाय और अपने साथ ले चले—सोचते सोचते वह जोश में आ

जाती और बिस्तरे पर से उठकर अंधकार की ओर आँखें फाड़ फाड़ कर देखती, फिर धीरे-धीरे सोचती—नहीं, वह माँ के साथ जायगी नहीं, बिना मिर्ज़ाजी के वह कैसे रह सकेगी ? फिर वह स्वयं ही निश्चय करती—वह माँ से प्रार्थना करेगी कि वे सब भी उसी के पास रहें—इतना बड़ा घर है उधरवाले हिस्से में सब रहेंगे और इधर मिर्ज़ाजी—बीच की मैं, दोनों के घर रहूँगी। फिर इन्हीं विचारों में लीन तन्मय सरला बालिका महमूदा न जाने कब सो जाती।

स्वप्न में भी उसे अपनी माँ का चेहरा दिखलाई देता। यही उसके पिछले जीवन की शेष स्मृति थी।

× × × ×

विनोद की इक्कीसवीं वर्षगाँठ थी। चारों ओर धूम मची हुई थी। वेदमती को हिसाब लगाते लगाते एकाएक मुन्नो की याद आ गई। उसने हिसाब लगाया और बोली "अगर आज वह लड़की होती तो पंद्रह वर्ष की होती, विनोद!" विनोद ने सिर झुका लिया। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। विनोद सोचने लगा—मुझी से तो लड़-कर भागी थी। इतने ही में नवलकिशोर आ गए। "अगर तुम्हारी वह लड़की होती तो अब ब्याहने योग्य होती" कहकर उन्होंने हँसने की चेष्टा की पर वेदमती के हृदय में हाहाकार मच गया। वह रोकर बोली "किंतु है नहीं।" दिन भर के कार्यों से थकी वेदमती रात को

बिस्तरे पर लेटी लेटी सोचती—सचमुच ब्याहने योग्य होती ? वह शादी करती। इस प्रकार अरमानों का खून तो न होता। उसे नन्हीं सी मुन्नी याद आती, "माँ की चीजें पटकती हुई, भाई की चपतें खाती हुई फिर ओंठ फुलाकर शिकायत करती हुई रूठी बालिका मुन्नी।"—इसी प्रकार वेदमती मुन्नी की ही बातें सोचती सोचती न जाने कब सो जाती।

× × × ×

नवलकिशोर ने पुत्र तथा पत्नी के साथ एक इंटर-क्लास के डब्बे में प्रवेश किया। इलाहाबाद स्टेशन पर काफी भीड़ थी। इसी बीच में एक वृद्ध मुसलमान ने दो औरतों के साथ उसी डब्बे में प्रवेश किया और उन्हीं के सामनेवाली 'सीट' पर अधिकार जमाया। यद्यपि औरतें बुर्के में थीं पर मर्द देखने में उच्च खानदान का लगता था। डब्बा छोटा था अतः एक दो आदमियों को छोड़कर अधिक भीड़ भी न चढ़ी। गाड़ी के चलते ही औरतों ने अपने अपने बुर्के उतार दिए और सभँलकर बैठ गईं। सबकी निगाहें उन्हीं की ओर खिंचीं। वेदमती आश्चर्य से टकटकी लगाए उस मुस्लिम लड़की की ओर देखने लगी। नवलकिशोर भी कुछ याद करने की कोशिश करने लगे। युवक विनोद ने माथे पर हाथ रख लिया। लड़की भी एकटक वेदमती की ओर देखने लगी, फिर वह आँख मूँदकर अपनी माँ के प्रीति-सुकोमल चेहरे से उसका मिलान करने लगी। सहसा उसके

मुँह से निकल पड़ा "हैं !" वृद्ध ने पूछा—क्या है बेटी ? महमूदा आराम से बैठ जा।

वेदमती ने सुना "महमूदा"। उसके दिल में आया खूब ज़ोर से चीख उठे "बेटी मुन्नी।" वह बुत से बने नवलकिशोर से बोली—यही तो मेरी बेटी है—सच ! मुन्नी ही तो है।

शंकित से नवलकिशोर बोले—किसी मुसलमान की लड़की है—तुम्हें तो सब मुन्नी ही सी लगती हैं।

"पहिचानो, यह मुन्नी ही है"—वेदमती ने अपनी बाँहें फैलानी चाहीं—"सब चिह्न मिला लो—गाल का बड़ा सा तिल—उमर देखो वही—" नवलकिशोर बोले "अरे तुम पगली हो—यह तो कोई मुसलमान की लड़की है। शक्लें क्या संसार में एक-सी नहीं हो सकती हैं ?"—वे इसी प्रकार वेदमती को समझा रहे थे पर स्वयं उनका दिल इन बातों को कबूल नहीं कर रहा था।

वेदमती पति की बात को समझने की कोशिश करती पर कुछ भी न समझ पाती। उसके आगे तो बेटी का चेहरा घूम रहा था और खून में उबाल-सा आ रहा था। एक छिपी हुई शक्ति उसे सामने बैठी लड़की की ओर खींच रही थी। नवलकिशोर के समझाने का उलटा असर हो रहा था। वे कहते "तुम्हारी बेटी नहीं है" पर माँ के हृदय में पुकार उठ रही थी—"तुम्हारी ही बेटी है।" वह पसीने से तर हो गई। करुणार्द्र होकर पति से बोली—"पर मुझे

पता नहीं क्या हो रहा है—बैचैनी सी मालूम पड़ रही है। ऐसा मुझे कभी किसी लड़की को देखकर नहीं हुआ है। हजारों लड़कियाँ देखीं पर इसे देखकर न जाने क्या हो रहा है।" "तुम तो बड़ी विचित्र हो। कल ही मैंने ठीक तुम्हारे जैसी शक्ल की औरत ट्राम में बैठी देखी थी तो क्या मैं उसे तुम्हें समझकर बातें करने लगता—और कहता कि तुम मेरी स्त्री हो—" नवलकिशोर की बात सुनकर वेदमती को हँसी आ गई। वह बोली—"बात करते तो ठुक भी जाते—अच्छी तरह" पर थोड़ी देर बाद उसने पुनः रट लगाई—"कह दो—शंका मिटा दो—मेरी ही बेटी है। तुम पहचानते हुए भी बन रहे हो"। नवलकिशोर के समझाने का वेदमती पर कुछ भी असर नहीं हो रहा था—"एक बार तो पुकार लेने दो बेटी।" इसी बीच में विनोद माँ के पास खिसक आया और धीरे से बोला "माँ, इसकी शक्ल तो मुन्नी से मिलती है—उमर का भी वही हिसाब है"। नवलकिशोर बोले "बेटा, उधर जाकर बैठो"। विनोद की समझ में सारा रहस्य आ गया। वेदमती बोली—"तुम्हें जरा भी ममता नहीं है" पर वे शांत से बने बैठे रहे। मातृ-स्नेह के आगे उनकी हार होने लगी। वेदमती की इच्छा खूब जोर जोर से रोने की हुई। उसका कंठ रुँधने लगा। वह छिप छिपकर अपनी पुत्री की ओर देखने लगी और सोचने लगी—बेटी को पा लिया पर इससे तो न पाना भला था।

मनातियाँ पूरी हुईं पर बड़े भयानक रूप में। सामने इतने दिनों की बिछुड़ी हुई बेटी बैठी थी पर माँ को बोलने का भी अधिकार न था। माँ का हृदय तड़प उठा। इतनी पास होते हुए भी वह मुन्नी से बहुत दूर थी।

ऊपर से कठोर बने नवलकिशोर भीतर ही भीतर रो रहे थे। उनके आगे एक ऊँची दीवाल-सी आकर खड़ी हो गई। अगर उससे फाँदते हैं तो भी कठिन है पर बिना फाँदे रहा भी नहीं जाता है। वे मर्द थे। उन्हें चारों ओर देखना था। एक ओर बिछुड़ी हुई बेटी और दूसरी ओर दुनिया—लड़ाई-झगड़े, मुकदमे और ऊपर से बदनामी। वे जानते थे कि लड़की मिलना कठिन है। अगर मिल भी जाय तो बारह साल मुसलमान के घर रही हुई लड़की को जातिवाले कैसे अपनायेंगे। वे अतृप्त नेत्रों से मुन्नी की ओर देखने लगे, उसी प्रकार जिस प्रकार पिंजड़े में बन्द पक्षी नीले आकाश में फिरते अपने बंधुओं की ओर देखता है।

महमूदा आँखें मूँदे अभी तक अपने हृदय की छिपी प्रतिमा से इस सामने बैठी औरत के चेहरे का मिलान कर रही थी—हू-बहू वही शक्ल है—वही भाव! उसे रत्ती भर भी संदेह न रह गया। वह सोचने लगी—तो क्या मैं हिन्दू हूँ। उसका सिर घूमने लगा पर फिर सँभलकर वह सोचने लगी—अगर यह माँ है तो मुझे देखकर भी चुप

क्यों है? उठकर छाती से लिपटा क्यों नहीं लेती? उसकी इच्छा एक बार उसे "माँ" पुकारने की हुई। उसे विश्वास हो गया कि यह धोखा नहीं है। पर ये लोग चुप क्यों बैठे हैं? क्या मुझे पहचानते नहीं हैं? उसके हृदय में द्वन्द्व मच गया। वह सकरुण नेत्रों से माँ की ओर देखने लगी। शायद अब भी कुछ कहे।

बूढ़ी माँ लेट गई और थोड़ी देर पश्चात् मिर्ज़ाजी भी लेट गए। वेदमती के बहुत ख़ुशामद करने पर नवलकिशोर उठे और मिर्ज़ाजी से बात छेड़ी—कहाँ जाइएगा?

"फतेहपुर जाऊँगा" मिर्ज़ा साहब प्रेमपूर्वक बोले।

"घूमने की इच्छा से या किसी कार्य-वश?"

"वहाँ मेरी बहिन रहती है, उसे लेने—हम इलाहाबाद में रहते हैं—यह मेरी लड़की है महमूदा—इसका पन्द्रह रोज़ तक निकाह है।"

नवलकिशोर का कंठ सूखने लगा। उन्होंने उठकर पानी पिया, फिर लेट गए। वेदमती के कुछ पूछने या कहने की हिम्मत न पड़ी। कितने ही स्टेशन आए और चले गए। वह धीरे धीरे सिसकने लगी—शायद बेटी का शव देखती तब भी इतनी दुःखित न होती—यह तो अपनी बेटी आँखों के सामने ही पराए की कहला रही है।

धीरे धीरे महमूदा ने वेदमती की ओर रुख किया। बुढ़िया सो रही थी और मिर्ज़ाजी ऊँघ रहे थे—केवल जाग

रही थी एक महमूदा। वेदमती ने बातचीत शुरू की। "बेटी..."उसका कंठ काँप गया—"फतेहपुर में तुम्हारे कौन-कौन रिश्तेदार रहते हैं?" महमूदा एक इसी शब्द को सुनने के लिये तरस रही थी। उसे सभी बेटी कहते हैं पर अपनी माँ के मुँह से यह शब्द कितना प्रिय लगता है। वह झट से बोल पड़ी "क्या मैं भी तुम्हें माँ कहूँ? एक बार—केवल एक बार ही के लिये आज्ञा दे दो"। "हाँ, मैं भी चाहती हूँ कि मुझे तुम माँ ही कहो—मेरी भी तुम्हारी ही तरह एक बेटी थी।"

"मेरी भी तुम्हारी ही तरह एक माँ थी।" महमूदा उद्विग्न-सी हो गई।

वेदमती अपने को और अधिक न रोक सकी। सारी बात साफ करते हुए बोली—बेटी, तुम सुखी हो! सच कहना।

"अब से पहले बहुत सुखी थी पर अब नहीं।"

"बेटी, तुम्हें क्या कभी माँ के मिलने की आशा थी?"

"माँ, थी तो पर इस तरह नहीं"। उसकी आँखें बरस रही थीं—"मैं मिर्जाजी को चाहती हूँ बहुत ज्यादा।"

"बेटी, मैं तुम्हें जिंदा और सुखी देखना चाहती थी—मेरी इच्छा पूरी हुई।"

"मैं भी एक बार अपनी माँ के अस्पष्ट चेहरे को स्पष्ट रूप से देखना चाहती थी।"

"बेटी, मैं तेरे जन्मते ही क्यों न मर गई पर क्या तू अपने कठोर माँ-बाप को भूल सकेगी ?"

"माँ, यह मेरे वश की बात नहीं है। .."महमूदा ने कई बार नवलकिशोर की ओर देखा पर वे उसी प्रकार सिर नीचा किए बैठे रहे। वे सोच रहे थे—क्या इससे भी कठिन कोई समस्या हो सकती है ?

इसी बीच गाड़ी रुकी। महमूदा उठी और खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई—इतने ही में दो-तीन यात्रियों ने चढ़ना चाहा। विनोद उठा और किवाड़ा बंद कर दिया। महमूदा पास ही खड़ी थी। पता नहीं, किस दैवी शक्ति द्वारा प्रेरित होकर विनोद ने बाहें फैला दीं और महमूदा उससे लिपट गई। "भैया—मिलना।" इससे अधिक वह कुछ भी न कह सकी, क्योंकि मिर्जाजी ने करवट बदल ली। महमूदा उनके पास जाकर बैठ गई। मिर्जाजी ने उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा—"बेटी, लेट जा" इतने ही में बुढ़िया भी उठी और महमूदा ने उसे पान लगाकर दिया। उधर विनोद माँ से जाकर बोला—तुम्हें दुनिया की इतनी परवाह है तो करो किंतु मैं संसार से लड़कर बहिन को लेकर रहूँगा—मुझे जाति से निकाल देना।

वेदमती बोली—"विनोद, तुमने उसे केवल पाँच ही साल तक पाला है पर जिसने पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है, क्या वह खुशी से दे देगा ? उसका दिल टूट नहीं जायगा।"

विनोद चुपचाप बैठ गया। उसकी समझ में न आया कि क्या करे।

महमूदा ने एक किताब निकाली और पढ़ने का बहाना किया। धीरे से कागज फाड़कर 'पेन' से अपना फतेहपुर और इलाहाबाद का पता लिखकर वेदमती को पकड़ा दिया। माँ ने उसे हृदय से लगा लिया। मुँह से निकल पड़ा "आह बेटी।" धीरे से विनोद ने भी अपना इलाहाबाद का पता लिखकर और उसे अच्छी तरह मोड़कर महमूदा की ओर फेंका जिसे महमूदा ने बड़ी सावधानी से उठा लिया। यह बात वेदमती और नवलकिशोर तक को न मालूम पड़ी क्योंकि विनोद डरता था कि कहीं वे मना न कर दें। मन ही मन वह बाप के विरुद्ध हुआ जा रहा था।

फतेहपुर आने में कुछ मिनटों की देर थी। वेदमती फूट-फूटकर रोना चाहती थी पर रो न सकी। आखिर स्टेशन आते आते वेदमती बेहोश हो गई। स्वभाव में मिलन-सार होने के कारण मिर्जाजी ने महमूदा को वेदमती का हाल पूछने के लिये उनकी तरफ भेज दिया। महमूदा माँ को बेहोश देखकर रोने लगी। नवलकिशोर गृहिणी को होश में लाने की चेष्टा करने लगे पर वे दिल में यही चाहते थे कि फतेहपुर के बाद ही उसे होश आए, क्योंकि वे डरते थे कि कहीं माँ की ममता कुछ बखेड़ा न उत्पन्न कर दे। अचानक नवलकिशोर ने महमूदा के सिर पर हाथ रखकर

धीरे से पुकारा "बेटी"। महमूदा अश्रुओं के कारण कुछ भी न कह पाई।

फतेहपुर स्टेशन आया। मिर्जाजी ने समझाया "बेटी चुप हो जा" फिर नवलकिशोर की ओर देखकर बोले "बड़े कमजोर दिल की लड़की है"। उत्तर में विनोद ने सिर हिलाया—"हाँ, ठीक कहा"। बुर्के ने पुनः महमूदा को ढक लिया। बेटी का चेहरा फिर सदा के लिये छिप गया। नवलकिशोर ने एक लम्बी साँस ली "उनकी बेटी रईस मिर्जाजी की एकलौती लड़की है।"

वेदमती को होश तो आ गया पर दिमाग में खराबी आ गई। वे सनकियों की तरह बकने लगीं। नवलकिशोर बेचारे घर से तो घूमने निकले थे पर पहुँचे लखनऊ पत्नी का इलाज करवाने। कुछ दिनों इलाज करवाकर वे अपनी पगली पत्नी को लेकर इलाहाबाद लौट आए।

यह इतना बड़ा सदमा था कि वेदमती न सह सकी। वह दिन गिनती रहती—"आज के छठें रोज मेरी लड़की की शादी है"। वह अपनी एक एक साड़ी बाहर निकालती और गहने बनवाने को पति से जिद्द करती। जब कभी होश में आती तब भी मुन्नी की ही बात करती—"अच्छा, तुम्हीं बताओ, बेचारी ने अपना पता क्यों दिया? उसे अवश्य कुछ आशा होगी—" नवलकिशोर उसे समझाते "वह बहुत सुखी है—तुम चिन्ता न करो।" वह पते को

हृदय से चिपकाकर घंटों रोती रहती। उसका पागलपन बढ़ने लगा।

× × × ×

महमूदा का स्वास्थ्य गिरता गया। वह अनमनी सी रहने लगी। दिनभर सोचा करती। उठते-बैठते मुँह से शब्द निकलते "हाय मैं हिन्दू की लड़की हूँ"। उसकी आँखें सदैव सजल रहतीं। कभी कभी उसकी शून्य दृष्टि देखकर मिर्जाजी डर जाते। वह घंटों एक वस्तु की ओर एक-टक देखा करती। अंत में महमूदा चारपाई पर पड़ गई। मिर्जाजी अपनी एकलौती पुत्री महमूदा के पास सदैव बैठे रहते—उनका खाना-पीना-सोना सब हराम हो गया। वह हाथ मलकर कहते—हाय बेटी, मैंने तुझे बड़ी मेहनत से पाला है। जब तू माँ-माँ करके तड़पती थी...तब से मेरी महमूदा। वे घंटों उसके सिर पर हाथ फेरा करते। महमूदा कभी कभी जोश में आकर उनके हाथों को कसके पकड़ लेती और कहती—"अब्बा, मेरे अब्बा, मैं तुम्हें छोड़कर न रह सकूँगी" फिर जोश ठंडा पड़ जाता। वह सोचती, मैं हिंदू की पुत्री हूँ। उसकी आँखों के आगे उसकी माँ की छाया घूमा करती—उसके दिल को एक मिनट के लिये भी चैन न मिलता।

रो-धोकर मिर्जाजी ने उसका निकाह टाल दिया। अंत में लड़की को अच्छी न होते देखकर लड़केवालों ने उसका

दूसरी लड़की से निकाह कर दिया। मिर्जाजी कितने ही डाक्टरों को दिखलाते। सब यही कहते—मानसिक रोग है; कोई सदमा पहुँचा है। दिन बीतने लगे, महमूदा की हालत बहुत खराब हो गई। डाक्टर कोई संतोषजनक उत्तर न देते। बस यही कहते—दिल कमजोर है।

मिर्जाजी एकटक अपनी बेटी की ओर देखा करते—पर वह आँखें बंद किए विचारों में लीन पड़ी रहती। उसे कुछ भी सुध न रहती। जरा सा भी खटका होने पर वह चौंककर घबड़ाती हुई उठ बैठती। उसके हृदय में बैठा कोई जोर जोर से चिल्लाता "हिंदू की बेटी।"

एक दिन मिर्जाजी ध्यानमग्न महमूदा के पास बैठे थे। उन्होंने धीरे से उसकी गीली पलकों पर हाथ फेरकर पूछा "बेटी, क्या सोचती हो?" प्रश्न सुनकर महमूदा मिर्जाजी से लिपट गई—"अब्बा सुनोगे, सचमुच सुनोगे? मैं क्या सोचती हूँ—नहीं, तुम नहीं सुन सकोगे अब्बा—मेरे अब्बा, मैं तुम्हें बहुत चाहती हूँ; संसार में सबसे ज्यादा लेकिन..." आगे उसका कंठ रूँध गया। वह शिथिल-सी होकर बिस्तरे पर गिर पड़ी। मिर्जाजी आँखों में आँसू भरकर कहते—"बेटी, कुछ कह भी। तुम्हारी इच्छा मैं मरकर भी पूरी करूँगा—पर सबके बदले खुदा से यही माँगूँगा कि वह मेरी महमूदा को अच्छा कर दे—उसके बदले—मुझे—मेरा सब कुछ ले ले।" महमूदा कहना चाहती पर कुछ कह न

सकती—"मेरे अब्बा तुम कितने अच्छे हो। लेकिन—" आगे वह रुक जाती, पता नहीं क्यों वह डरती थी।

एक दिन महमूदा की अवस्था अधिक बुरी हो गई। रात को मिर्जाजी उसी के पास बैठे थे। सहसा महमूदा का ध्यान टूटा। उसको धक्का लगा—अब्बा उसे कितना चाहते हैं। उसके दिल में सब भेद कह देने की इच्छा हुई पर वह पुन: डरकर सोचने लगी—कहीं ऐसा न हो कि माँ-बाप तो मिल जायँ पर अब्बा सदा के लिये खो जायँ। ऐसा सोचकर वह भयभीत होकर रोने लगी। मिर्जाजी ने रोने की आवाज सुनी तो वे उसे चुप कराने लगे—"बेटी, तुझे क्या हो गया है; क्यों रोती है?" महमूदा ने कठोर हृदय करके सिसकते हुए कहना प्रारम्भ किया—"अब्बा, आज सब कहूँगी—सुन लो। सबसे पहले यह सुनो कि मैं तुम्हें बहुत चाहती हूँ। पर तुम्हें प्रतिज्ञा करनी होगी कि मुझे कभी नहीं छोड़ोगे।" मिर्जाजी बोले "बेटी, मैं तुझे कैसे छोड़ सकूँगा? मेरी तो केवल तू ही है"। "मेरे अच्छे अब्बा, तो सुनो"। वह मिर्जाजी का सहारा लेकर बैठ गई—"अब्बा-अब्बा! मेरे माँ-बाप जिंदा हैं—मेरी माँ मेरे लिये तड़पती है—वह मुझे अभी तक नहीं भूल सकी है—मैं हिंदू हूँ"। मिर्जाजी घबड़ा गए। मरणासन्न बेटी क्या सचमुच अंतिम बार बकने लगी! वे रोकर बोले "सच बेटी?" "विश्वास करो अब्बा, मैं बक नहीं रही हूँ। तुम भी उन्हें जानते हो—

उस मर्तबा इलाहाबाद स्टेशन से ही जो गाड़ी पर बैठे थे—जो स्त्री बेहोश हो गई थी वे ही मेरी माँ हैं। अब्बा—मैं उन्हें चाहती हूँ। वे मेरे माँ-बाप हैं।" मिर्जाजी उछल पड़े—"बेटी, कोई डर नहीं। तू उनकी पहले है—मेरी पीछे—सबेरे चलेंगे। उन्होंने मुझे अपने घर का पता भी बतलाया था।" महमूदा ने सुना—कल चलेंगे। वह बच्चों की तरह रटने लगी—कल चलोगे—कल चलोगे। फिर धीरे से मिर्जाजी का हाथ पकड़े पकड़े वह आज पहली बार सुखपूर्वक सो गई।

मिर्जाजी सोचने लगे—मैं इसे कितने वर्ष से फुसलाता आया हूँ "चलते हैं बेटी"। आज वे बारह वर्षों बाद अपनी बेटी की बात पूरी करने में सफल हो सकेंगे।

सवेरा होते ही मिर्जाजी महमूदा को साथ लेकर एक ताँगे पर बैठकर पता पूछते पूछते वहाँ पहुँचे—जहाँ पहुँचने की उन्हें स्वप्न में भी आशा न थी। मिर्जाजी ने कसकर कमजोर महमूदा का हाथ पकड़ लिया। नवलकिशोर दौड़े "बेटी मुन्नी!" उन्होंने उसके सिर पर हाथ रक्खा और फिर मिर्जाजी से लिपट गए। वेदमती ने सुना तो वह अंदर से दौड़ी आई पर अटक गई और आँखें फाड़कर मुन्नी की ओर देखने लगी। मुन्नी माँ की ऐसी विचित्र हालत देखकर उससे लिपट गई—"माँ-माँ, तुम्हें क्या हुआ?" वह उद्विग्नता-पूर्वक कहने लगी—"पुकारो माँ, मुझे बेटी

कहकर पुकारो।" पर वेदमती बेहोश हो गई। थोड़ी देर बाद होश आने पर मुन्नी उससे फिर लिपट गई—"पहिचानो माँ।" वेदमती ने बाहें फैलाकर बेटी को हृदय से लगा लिया। आज बेहोशी के बाद अपनी प्रियतमा बेटी के पाने पर उसकी सनक सदैव के लिये दूर हो गई। जब विनोद और महमूदा मिले तब विनोद हँसकर कह ही तो बैठा—अब मुझसे कभी न लड़ना—अभी तो बारह वर्षों का ही देश-निकाला दिया था, अब फिर लड़ीं तो जन्म भर का दे दूँगा।

दिन भर इधर-उधर की बातें होती रहीं—सारी घटनाएँ दुहराई गईं। कट्टर-हिंदू नवलकिशोर का मस्तक बार बार मिर्जाजी के चरणों पर झुकने लगा। मिर्जाजी बोले "मुझे खुशी है कि मेरी महमूदा को दो शुभ-चिंतक मिल गए—यह दोनों की समान बेटी है। पहले पिता आप और दूसरा मैं। मुन्नी के पिता नवलकिशोर और महमूदा का अब्बा मैं—" सब हँसने लगे।

रात होने लगी। मिर्जाजी यह कहते हुए जाने को तैयार हुए "अम्माँ अकेली है" पर महमूदा ने उनका हाथ पकड़ लिया "अब्बा, तुमने तो मुझे कभी भी न छोड़ने की प्रतिज्ञा की थी"। वह रोने लगी। मिर्जाजी बोले "मैं अभी आ जाऊँगा।" मिर्जाजी घर लौटे पर मानों प्राणों को खोकर—सारा घर सूना लगने लगा। उन्हें जरा सी बच्ची

की—अम्माँ-अम्माँ करके रोती हुई से लेकर उसके माँ-बाप से मिलने तक की घटनाएँ याद आने लगीं।

तीसरे दिन सोकर उठते ही उन्होंने देखा कि नवलकिशोर, महमूदा, वेदमती और विनोद खड़े हैं। भेट मुलाकात के पश्चात् नवलकिशोर हाथ जोड़कर बोले "मिर्जाजी, एक प्रार्थना है। प्रतिज्ञा करिए कि मानेंगे, नहीं तो हम सब यहीं भूखे-प्यासे बैठकर 'अनशन' करेंगे।" महमूदा बोली "अब्बा, मेरी खातिर तुम्हें प्रतिज्ञा करनी ही पड़ेगी।" मिर्जाजी को जिस बात का शक था वही हुआ। नवलकिशोर हाथ जोड़कर बोले—आपका यह घर किराए पर रहेगा और आपके उस घर के दूसरी तरफवाले किराए-दार हटा दिए गए हैं। आपको वहीं रहना पड़ेगा। आप अपनी बेटी महमूदा के ही पास अच्छे लगते हैं।

मिर्जाजी खुशी से राजी हो गए। उनके दिन बड़े सुख से बीतने लगे। नवलकिशोर बड़े भाई के समान मिर्जाजी की इज्जत करते और उनकी माँ को अपनी माँ समझते थे और महमूदा—वह दो घरों की लाड़ली बेटी और ऊपर से मिर्जाजी की सिर-चढ़ी—दिनोंदिन कमल की तरह विकसित होने लगी।

× × × ×

धीरे धीरे मिर्जाजी और नवलकिशोर ने उसके विवाह की बातें छेड़ीं। हिंदू घरों में बातचीत हुई पर जातिवाले

कुछ निश्चित जवाब नहीं देते थे। कई एक हिंदू लड़के मिले भी पर वे मिर्जाजी की लाड़ली बेटी के उपयुक्त न थे। नवलकिशोर ने मिर्जाजी से प्रार्थना की कि वे अब अपनी महमूदा के लिये एक मुसलिम सुंदर युवक ढूँढ़ें पर मिर्जाजी ने राय दी कि यह ठीक नहीं। मुस्लिम लड़के बहुत हैं पर संभव है लड़की आपसे छूट जाय। दोनों पिताओं को चिंता थी। जब महमूदा की राय ली गई तो उसने स्पष्ट उत्तर दिया कि वह देश-सेवा करना चाहती है। उसे अपने ध्येय पर अटल देखकर उन्होंने खुशी से आज्ञा दे दी। दो अभिभावकों के मजबूत हाथों का सहारा पाकर महमूदा अपने सेवा-पथ पर बढ़ी और दिन-प्रतिदिन उन्नति करती गई।

गरीबों की दुनिया से आशीर्वाद उठने लगे—"देवी, तुम्हें ईश्वर सुखी रक्खे"। अनाथालयों की अवस्था सुधर गई। मुन्नी की संरक्षकता में हर एक कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। खद्दर के उज्ज्वल वस्त्रों में वह देवी सी प्रतीत होती।

घर आकर वही अलहड़ महमूदा "अब्बा—अब्बा" करके मिर्जाजी की खोपड़ी खा जाती। वे कहते—मैं बूढ़ा हो गया, तेरी बातें समझने की मुझमें बुद्धि नहीं—तू इतना लम्बा लेकचर न देकर सिर्फ अपना मतलब कह दिया कर कि किस चीज की जरूरत है।

"पचास रुपये दे दो—एक गरीब के घर आग......"
मिर्जाजी ने टोककर कहा—लेक्चर न दे—ले यह ताली, तिजोरी में से निकाल ले।

× × × ×

डा० निर्मलचंद्र बड़ी ख्याति के साथ इँग्लेंड से भारत लौटे और इलाहाबाद में उन्होंने प्रैक्टिस शुरू की। असंख्य मरते हुओं को जीवन-दान मिला।

उस दिन महमूदा का लेक्चर था। लोग उसकी एक एक बात पर पुष्प-वृष्टि कर रहे थे। डा० निर्मलचंद्र उधर ही से एक रोगी को देखकर लौट रहे थे। उन्होंने मुन्नी का केवल नाम ही सुना था। उत्सुकता-वश वे टाँगा रोक-कर पार्क में घुसे। वे खद्दर के श्वेत वस्त्र पहिने देवी सी मुन्नी को कुछ क्षणों तक चकित से देखते रहे। लेक्चर समाप्त हुआ। उन्होंने दूर से ही एक फूलों का बड़ा सा गजरा मुन्नी के चरणों पर प्रेम और श्रद्धा से फेंका। मुन्नी ने आँखें उठाई। प्रथम बार डाक्टर का मुन्नी से परिचय हुआ। मुन्नी देश-भक्त डाक्टर को इज्जत की निगाह से देखने लगी।

एक दिन संध्या को सब बाहर बैठे थे। इसी बीच में नौकर ने एक विजिटिंग कार्ड लाकर दिया। नवलकिशोर बाहर दौड़े—"अरे निर्मल, इतने दिन तू कहाँ छिपा रहा?" डा० निर्मल ने हँसकर कहा—कार्यों में फँसा रहा।

मुन्नी चकित सी नीची दृष्टि किए खड़ी थी। नवल-किशोर ने कहा—निर्मल, मेरी बेटी को तू जानता है ?

उसने सिर हिलाकर कहा—"खूब अच्छी तरह। भला आपको कौन नहीं जानता—" हँसती हुई मुन्नी चाय तैयार करने लगी।

डा० निर्मल नवलकिशोर के घनिष्ठ मित्र का पुत्र था।

× × × ×

वर-वधू के वेष में हवन-कुंड के सामने डा० निर्मल और मुन्नी बैठे थे। विवाह के मंत्र पंडित खूब जोर जोर से पढ़ रहा था। औरतें गा रही थीं और मिर्जाजी तथा नवल-किशोर हँस हँस कर बातें कर रहे थे। नवलकिशोर ने बधाई दी—"आज आप अपनी सिर-चढ़ी लड़की की फिक्र से छूट गए।" हँसकर मिर्जाजी बोले—आपको भी अपनी लड़की मुन्नी का विवाह मुबारक हो।

मुन्नी की माँ को तो आज किसी से बात करने तक की फुर्सत न थी।

भैया

गंगा की मँझधार में दो प्राणियों को लिए एक छोटी सी किश्ती आँधी और तूफान पर विजय पाने की असफल चेष्टा करने लगी। आँधी धू धू करके बढ़ती ही गई। ऊँची-ऊँची लहरें उठ उठकर भीषण अट्टहास करने लगीं। वह छोटा सी किश्ती बीच में थिरकने लगी। चारो ओर काला अंधकार फैलने लगा और वह किश्ती भी अस्पष्ट हो उस अंधकार में छिपने लगी।

"भैया, मैं थक गया हूँ"—एक करुण क्षीण वाणी क्रंदन कर उठी।

"उदय, घबड़ाओ नहीं" भयभीत किंतु गंभीर वाणी ने उत्तर दिया।

"भैया, अंधकार तो देखो! अब क्या होगा?" भयभीत काँपती हुई पहली वाणी ने पुनः पूछा।

प्रलयकारी तूफान भयंकर हो गया। ऊँची-ऊँची लहरें और तिनके सी बह रही थी वह छोटी सी किश्ती।

"उदय, मेरे निकट आओ, मैं थक गया हूँ" घबड़ाकर दिवाकर चिल्लाया।

बेहोश सा उदय उठा और चल दिया भाई के वक्षःस्थल में मुँह छिपाने। डाँड़-पतवार सब ईश्वर के भरोसे छोड़

दिए गए—और छोड़ दी गई जीवन की आशा। घना अंधकार—भाई के आलिंगन-पाश में जकड़ा हुआ उदय, और वह छोटी सी किश्ती बह रही थी अपने इच्छानुसार।

एक भयंकर लहर ने आकर उसको उलटना चाहा। "भैया" वक्षःस्थल से लिपटा हुआ युवक रो उठा। "फिर मिलेंगे उदय..."—मृत्यु का भीषण साकार नृत्य—और वह छोटी सी किश्ती उलट रही था।

"भैया" शब्द पानी की लहरों के गर्जन में छिप गया। "फिर मिलेंगे" आँधी की धू-धू ने अट्टहास किया।

वह आलिंगन ढीला पड़ गया। दोनों युवक दो भिन्न-भिन्न दिशाओं को बह चले। हा-हाकार करती हुई आँधी आगे बढ़ी। और वह किश्ती?—वह तो कब की समाधि ले चुकी थी।

× × × ×

कादंबरी ने सुना, वह छाती पीटकर रो उठी। लाला वंशीधर ने सुना, वह चेतनाहीन-से होकर कुर्सी पर बैठे रह गए। आँखों तले अँधेरा छा गया—मानों किसी ने सारे शरीर का ख़ून निचोड़ लिया हो। उधर गृहिणी छाती पीट रही थी। वे भौचक्के से एकटक देखते रहे, "एक साथ ही दो!—दोनों ही!!" कितना भीषण धक्का था! श्यामा की आँखों में एक कतरा भी आँसू न था। वह इस घटना पर विचार करना चाहती थी। कैसी अनहोनी घटना है।

दोनों ही—पति और देवर दोनों ही ! जिसने जिसने सुना, एकबारगी सभी काँप उठे "दोनों ही !"

गंगा छान डाली गई पर एक भी शव का पता न चला। माता जिस समय जोर जोर से रोकर कहती—"बेटा, क्या तुम्हारा शव भी भाग्य में न बदा था ?" उस समय अड़ोसी-पड़ोसी परिचित-अपरिचित सभी रो पड़ते थे। कादंबरी को अपनी देह रुई से भी ज्यादा हलकी जान पड़ती। सारा वायुमंडल गूँजता सुनाई पड़ता। लोग बात करते पर उसे केवल सुनाई पड़ता—दिवाकर और उदय।

श्यामा अपनी माँग की चटकीली सिंदूर-रेखा पोंछने को हाथ बढ़ाती पर उसके आगे उसी दम दिवाकर का मुस-कराता हुआ चेहरा आता, वह चौंक पड़ती। वह हाथों की चूड़ियों की ओर भयभीत होकर देखती पर उसी समय उसे दिवाकर की कुछ दिनों पहलेवाली प्रशंसा-सूचक दृष्टि याद आती "कितनी सुंदर लगती हैं यह चूड़ियाँ !" वह चूड़ियों पर से हाथ उठा लेती। आशा की एक धुँधली सी किरण चमक उठती। उसी समय माताजी का कंठ गूँज पड़ता—"बेटा ! क्या तुम्हारा शव"—श्यामा कान पर हाथ रख लेती, फिर धीरे-धीरे रोती।

× × × ×

धीरे से उदय ने आँखें खोलीं और आश्चर्य से चारों ओर देखा। वह बालिका खिड़की की ओर मुँह किए कोयल

को चिढ़ा रही थी—"कुहू ! कुहू !! कुहू !!!" उदय ने क्षीण स्वर से पूछा—"मैं कहाँ हूँ ?" प्रश्न सुनकर बालिका घूमी। वह अत्यंत सुंदरी थी। वह प्रसन्नता-पूर्वक "घर पर" कहकर जोर-जोर से हँसने लगी। उदय थोड़ी देर तक उसकी ओर देखता रहा। उसकी चंचलता में आकर्षण था।

"आज आप कितने दिन बाद होश में आए हैं"—कहकर मोहिनी ने निश्चिन्तता की साँस ली। उदय ने आँखें मूँद लीं। उसे आँधी और तूफान याद आया—वह भैया के वक्षःस्थल से लिपटा था और कुछ याद नहीं। वह उत्तेजित हो उठा। "भैया कहाँ हैं ?" पंद्रह वर्ष की बालिका इस प्रश्न से चौंकी "कैसे भैया ? हैं ! आप उठते क्यों हैं ?" उसने पिता को आवाज दी। एक अधेड़ ने प्रवेश किया। तब तक उदय की चेतना पुनः लुप्त हो चुकी थी।

धीरे धीरे उदय की कमजोरी दूर होने लगी। वह अब चलने-फिरने लगा। उदय ने देखा—घर में केवल दो ही प्राणी हैं, पिता और पुत्री। बाकी नौकर-चाकर। मोहिनी जब जब सस्नेह पूछती—"अब कैसी तबियत है ?" उस समय उदय अपनी सारी वेदना भूल जाता। मोहिनी के पिता उदय को ध्यान से देखते—कैसा सुंदर होनहार युवक है। वह युवक के सिर पर हाथ फेरते और दिल में आशीर्वाद देते। उदय धीरे धीरे दुहराता—हम और

भैया जल-विहार को निकले थे—ओफ, कितना भयंकर तूफान था। भैया थक गए थे। उन्होंने मुझे हृदय से लिपटा लिया था—फिर घना अंधकार, कुछ याद नहीं, पर डूबते समय उन्होंने कहा था अंतिम बार जब कि नौका जोर जोर से हिल रही थी "फिर मिलेंगे"—कहते कहते उसकी आँखों में आँसू छलछला आते। वह उत्तेजित होकर कहता "अब जाऊँगा—भैया को खोजने।"

अनुरोध भरे स्वर में शिवदयाल कहते "अभी नहीं!" प्रार्थना-भरे शब्दों में मोहिनी दुहराती "अभी नहीं!!" शिवदयाल और मोहिनी दोनों ही युवक को इस तरह सदा के लिये खो देना नहीं चाहते थे।

मोहिनी पेड़ की डाल का सहारा लिए खड़ी थी। धीरे धीरे उदय उसके पीछे जाकर खड़ा हो गया। मोहिनी विचारों में लीन थी।

"मोहिनी"—उदय ने धीरे से पुकारा।

मोहिनी ने घूमकर देखा, उदय उसके निकट खड़ा था।

"अब मैं जा रहा हूँ।"

सहसा मोहिनी ने प्रश्न किया 'कहाँ?" उदय थोड़ी देर तक खड़ा सोचता रहा कि इस "कहाँ" का क्या उत्तर दे। उसने अपने दिल से पूछना चाहा पर उसका दिल स्वयं ही पूछ रहा था "कहाँ?" पत्तों की आड़ में बैठी कोयल कुहकी "कुहू" पर उदय को लगा वह भी पूछ

रही है "कहाँ ?" पर उदय स्वयं इस "कहाँ" का उत्तर नहीं जानता था।

"मोहिनी, कहीं भी चला जाऊँगा, दुनिया बहुत बड़ी है"—कहकर उसने हठात् हँसने की चेष्टा की। पर मोहिनी इस रूखी—बनावटी—हँसी के उत्तर में खुद न हँस सकी।

शिवदयाल बोले—बेटा, अपने घर लौट जाओ, क्या तुम्हें विश्वास है कि तुम अपने भैया को खोजने में सफल हो सकोगे ?

उदय चुप हो गया। क्या उत्तर दे ? उसके आगे घूम गया वह दृश्य—भीषण तूफान—भैया के वक्ष से लिपटा वह—फिर अंधकार।

"बेटा, कहता हूँ घर लौट जाओ।"

सहसा उदय ने दुहराया "घर लौट जाऊँ ?" उसे लगा वह घर गया है, सब पूछते हैं दिवाकर कहाँ है ? उसे कहाँ छोड़ आए ? माता छाती पीट रही है, सभी उसकी ओर आँखें फाड़ फाड़कर देख रहे हैं—वह क्या उत्तर दे ?—वह उत्तेजित होकर बोला—घर ? भैया को खोकर क्या घर जाऊँ ? कभी नहीं।

मोहिनी उसके हाथों को पकड़कर आग्रह-पूर्वक बोली—घर लौट जाओ, तुम्हें पाकर सारे प्राणी आधे दुःख को भूल जायँगे।

× × × ×

आज ठीक महीने बाद उदय अपने घर की ओर बढ़ा। उसका हृदय बैठने लगा। कदम भारी पड़ने लगे। एक एक करके सभी बातें याद आने लगीं। वह दिवाकर को कितना प्यार करता था। आज उसका दिवाकर—मित्र दिवाकर—भैया दिवाकर उससे कितनी दूर है। ठीक एक महीने पहिले आज के दिन दोनों भाई घर से साथ साथ निकले थे। दरवाजे पर खड़ी भाभी ने पूछा था "कब तक लौटोगे ?" भैया ने मुस्कराकर लापरवाही से कहा था "दो घंटे तक।" पर कौन जानता था कि वह दो घंटा इस जिंदगी में भैया के लिये कभी भी न आवेगा। उदय के दिमाग में हथौड़ी की तरह शब्द चोट करने लगे—दो—घंटे—तक।

पर आज वह अकेला उसी घर को लौटा जा रहा है—भैया को खोकर। "कितना भीषण तूफान था वह—भैया ने मुझे कितने जोर से जकड़ लिया था शायद कभी नहीं छोड़ने के लिये"। फिर उसकी आँखों के आगे उस दिन वाला घना अंधकार छा गया। उदय का सिर पत्थर सा भारी हो गया। पर वह घर की ओर बढ़ा जा रहा था। सब उसकी ओर घूम घूमकर देख रहे थे "हैं, उदय तुम ?" पर उदय बहरा-सा बढ़ा जा रहा था। नौकर ने किवाड़ खोले। उदय घर के भीतर घुसा। सारा सूना घर चिल्ला उठा "उदय बाबू—उदय—" पर उदय तो सोच

रहा था—कितना भीषण तूफान था वह—भैया के आलिंगन में जकड़ा वह फिर अंधकार।

उदय माँ की गोद में चेतनाहीन सा पड़ा था।

× × × ×

जो आता वही पूछता "दिवाकर कहाँ है?" इस "कहाँ?" को सुनते सुनते उदय पागल सा हो गया। माँ रोकर कहती "बेटा, दिवाकर को कहाँ छोड़ आए?" श्यामा की आशा टूट गई। वह रोकर कुछ शंकित सी देवर से पूछती "सच बताओ! वे कहाँ हैं? क्या सच-मुच डूब गए?" उदय चिढ़ उठता—ऐसे ऐसे शब्द मानों उसके शरीर पर भीगे बेंत के समान पड़ते। वह तिलमिला उठता। लाला वंशीधर पुत्र से कहते "तुम्हें कितना चाहता था!" इस प्रकार की बातों से उदय ऊब उठा। वह लोगों के नेत्रों में अविश्वास की छाया देखता। वह सोचता, क्या ये लोग समझते हैं कि मैं दिवाकर को डुबाकर आप अकेला चला आया हूँ? उसे चारों ओर अशांति ही मिलती। श्यामा के विशाल नेत्रों से वह बचने की कोशिश करता मानों समसुच ही वह उसका अपराधी हो—उसके पति का घातक हो।

सोचते सोचते उदय का दिमाग खराब हो जाता। उसे चारों ओर दिवाकर की छाया दिखलाई देती। लोग उसकी ओर उँगली उठाकर कहते "बड़े भाई दिवाकर का तो पता

नहीं पर हाँ छोटा भाई उदय लौट आया है।" उदय के हृदय में शब्द चुभ जाते—छोटा उदय लौट आया है, उसकी दृष्टि नीची हो जाती।

× × × ×

घर में सारा दिन उत्पात-सा मचा रहता। माता छाती पीटती, पिता बुत सा बैठा रहता, श्यामा सिर धुनती। उधर अकेला बैठा बैठा युवक सोचता—उफ! कितना भीषण तूफान था—और भैया के आलिंगन से लिपटा वह—।

एक अर्धनिशा को उदय की नींद उचट गई। उसने सुना, पड़ोसी की छत पर कोई किसी से कह रहा है "जिसकी जरूरत थी वह न लौटा—बेचारी श्यामा लुट गई"। उदय रुआसा हो गया। आधी आधी रात तक लोग उसी के विषय में चर्चा करते हैं। उसे रात्रि को भी शान्ति नहीं मिलती। वह आँखें फाड़-फाड़कर अंधकार की ओर देखता, फिर सोचता—भीषण तूफान—नौका डूब रही थी—आलिंगन ढीला पड़ रहा था—"फिर मिलेंगे।"

वह बिस्तरे से उठा, अपने भाई से मिलने के लिये। सब सो रहे थे—उधर उदय दूर—सुदूर बढ़ा जा रहा था।

× × × ×

चार वर्ष बीत गए।

अमवा की डाल पर कोयल कुहुक उठी—कुहू—कुहू—कुहू। चार वर्ष पहले की तरह मोहिनी ने उसे चिढ़ाना

चाहा कु...हू पर मोहिनी का स्वर ऊँचा न उठ सका। वह बीच में ही अटक गई। उसने ढूँढ़ा, डाली पर पत्तों की आड़ में सिकुड़ी बैठी, वह छोटी सी चिड़िया पुन: कूक उठी "कुहू! कुहू!! कुहू!!!" मोहिनी को लगा आज उसके गाने में वह मधुरता नहीं है।

मोहिनी गुनगुनाई—आज तुमने वैसा नहीं गाया जैसा एक दिन—बहुत दिन बीत गए, गाया था—जब वे प्रथम बार होश में आए थे।

यहीं पर उदय एक दिन उससे बिदा माँगने के लिये उसके एकदम निकट खड़ा था। उसने उदय से पूछा था "कहाँ?" मोहिनी को ऐसा लगा—हर एक पेड़ लंबे लंबे कदम बढ़ा रहा है, बगीचा फैला जा रहा है, पत्तियाँ बढ़कर आकाश को छू रही हैं, एक एक फूल विचित्र विचित्र रूप धारण कर बढ़ रहे हैं, काँटे इतने ज्यादा बढ़ गए हैं कि उसके चारों ओर जाल सा बुन दिया है। चारों ओर से ध्वनि निकल रही है—दुनिया बहुत बड़ी है—फिर एक बनावटी अट्टहास गूँज उठा।

डरकर मोहिनी उदासीन सी अपने कमरे में लौट आई।

× × × ×

"चार वर्ष बीत गए भैया" एक-एक शब्द आधी रात में गंगा की शांत लहरों पर थिरक उठा। किन्हीं बलिष्ठ हाथों ने पीछे से पकड़ना चाहा पर तब तक वह युवक छूटकर गंगा

की लहरों में गोते खाने लगा। किंतु शीघ्र ही वह संन्यासी इस चेतनाहीन युवक को कंधों पर लादकर अँधेरी निशा को चीरकर आगे बढ़ा। एक मील चलने पर वह एक कुटी में घुसा। युवक को फूस की शय्या पर लिटा दिया। एक दीपक जलाया गया, अँधेरी कुटी जगमगा उठी। संन्यासी युवक की ओर बढ़ा। चेहरा देखते ही वह आश्चर्य से खड़ा रह गया। उसके शान्त चेहरे पर एक ज्योति सी छिटक गई। दीपक हाथ से छूट गया। संन्यासी "मेरे उदय" कहता हुआ चेतनाहीन युवक की ओर झुका।

निशा बीतने लगी। वह उठा—"आज मेरी तपस्या सफल हुई—" इतने ही में उदय ने आँखें खोलीं। पुतलियाँ ऊपर चढ़ी हुई थीं। वह गुनगुनाया—ओफ़, कितना भीषण तूफ़ान—। दिवाकर ने उदय का सिर गोद में रख लिया। "भैया के हृदय से लिपटा मैं—" संन्यासी झुका।—मुझे पहचानो उदय!

"कितना घना अंधकार"—

दिवाकर ने उसी दिन की तरह भयभीत होकर भाई को हृदय से लगा लिया। उदय चिल्लाया "भैया।"

× × × ×

"दिवाकर, उजड़ा घर आबाद करने चलो।"

"मैं संन्यासी हूँ—घर-बार सब छोड़ दिया। एक बार तुम्हें देखने की इच्छा थी—मरने के पहिले एक बार सुनना

चाहता था कि तुम जिंदा हो, सो मेरी इच्छा पूरी हुई—मेरी तपस्या सफल हुई। दुनिया के मुँह से यह नहीं कहलवाना चाहता था कि बड़े भाई के साथ छोटा भाई गया था पर हमेशा के लिये बड़े भाई ने उसे खो दिया। दुनिया की संदेह-भरी निगाहों से बचना चाहता था।"

"मुझे मरने देते! मैं तुम्हारी ये कठोर निराशा-पूर्ण बातें तो न सुनता।" उदय दुखी होकर बोला।

"जो भी हो"—संन्यासी के चेहरे पर कठोरता और गंभीरता के भाव थे।

"भाभी को भूल गए?"

"उदय, माया-मोह का जाल मत बिछाओ।"

उदय ने पैर पकड़ लिया—"संन्यासी, एक बार चलो, दुनिया को विश्वास दिलाने के लिये।"

× × × ×

शिवदयाल चिंतायुक्त बैठे थे। इसी बीच में हँसती हुई मोहिनी दौड़ी आई—"पिताजी, देखिए यह कौन आए हैं।" शिवदयाल ने जल्दी से उठकर देखा—उदय खड़ा है, एक प्रतिभाशाली युवक संन्यासी के साथ।

"उदय, तुम्हारे भैया—" शिवदयाल को बीच ही में टोककर उदय बोला "हाँ, ढूँढ़ लाया पर इस भेस में"। उदय अशांत था।

× × × ×

मोटर शीघ्रता से बढ़ी। इतने ही में एक धक्का सा लगा। जल्दी से मोटर रोकी गई। वे सब मोटर से उतरे। दिवाकर और उदय दोनों चिल्लाए "पिताजी", उधर शिव-दयाल की आँखों में आँसू आ गए "मेरे बचपन का मित्र वंशी।"

वंशीधर को मोटर में लेटाया गया। चेतनाहीन लाला वंशीधर बकने लगे "दोनों ही—एकदम दो—दोनों ही"। दिवाकर की आँखों में आँसू आ गए। संन्यासी की आँखों में मोह का चिह्न देखकर उदय कुछ प्रसन्न सा हो गया।

सारे घर में आनंद का समुद्र उमड़ पड़ा। इतने दिन के रोते हुए चेहरे हँस पड़े। पर श्यामा पहले तो पति को देखकर हँसी फिर एकाएक गंभीर हो गई।

"क्या तुम सचमुच चले जाओगे ?"

"श्यामा, मुझे रोको मत।"

"जाकर करोगे क्या ?"

"परोपकार"।

"अपनी स्त्री को रुलाकर, उसे वैधव्य का दुःख देकर, क्या परोपकार करोगे ?" श्यामा आगे बढ़ी—बोली।

दिवाकर पीछे हटा—श्यामा, मोह बनकर मत डसो!

"क्या मुझे भूल सकोगे ? क्या मैंने कभी तुम्हारी आज्ञा को टाला है ? क्या एक पल भी मैंने तुम्हारे बिना सुख या शान्ति का अनुभव किया है ?"

दिवाकर ने टोका—देवी—

"नहीं—नहीं"—श्यामा चरणों पर झुकी—अगर मैंने कभी अधर्म की बात दिल में सोची हो तो तुम चले जाओ।

दिवाकर रुका। शिवदयाल और लाला वंशोधर ने समझाया "भगवान् की पूजा दिल में करो बेटा, गृहस्थ होते हुए भी परमानंद को प्राप्त करो, तभी तो सच्चे संन्यासी हो! पवित्र स्थान बनवाओ—देवालय बनवाओ। मेरे बेटे, एक हरी-भरी गृहस्थी को मत उजाड़ो।"

× × × ×

मोहिनी ने नव-वधू के रूप में घर में प्रवेश किया। दिवाकर ने दिल खोलकर उदय और मोहिनी को आशीर्वाद दिया।

उदय जब सोकर उठता, तब देखता कि उसके भक्त भैया—विशाल ललाट में टीका लगाए—हाथों में फूल-दीप वगैरह लिए मन्दिरों से लौट रहे हैं। पीछे पीछे देवी सी भाभी, गंगाजी के नहाए, गीले कपड़े हाथ में लिए आतीं।

उदय खड़ाऊँ की आवाज सुनते ही उठ बैठता, पर दिवाकर ताड़ जाता। उदय जोर से हँसकर कहता "भैया नमस्ते"। भैया आशीर्वाद देते "प्रसन्न रहो"—पर भाभी हँसकर आशीर्वाद के आगे जोड़ती—नींद में वृद्धि हो—खूब मजे में देर तक सोओ।

———

तारा भाभी

"सुरेश, सुन तो, अरे इधर आ तो सही !" "क्या है भैया ? वहीं से कह दो न !" सुरेश कमरे के बाहर कुत्ते के साथ खेलने में मग्न था। पुनः गजेंद्र ने जोर से बुलाया 'सुनता नहीं है ?' "आ तो रहा था"—कहते कहते खिलाड़ी सुरेश भाई के पास आ खड़ा हुआ। धीरे से गजेंद्र ने पूछा "सुरेश, ठीक ठीक बताना—हाँ, बता तो वह कैसी है ?" "कौन, वही लड़की जिसे हम लोग देखने गए थे ? भैया, सच कहता हूँ, बड़ी सुंदर है, खूब गोरी है, बड़ी बड़ी आँखें हैं और वह मेरी ओर देखकर हँसती थी। माँ कहती है कि वह मेरी भाभी लगेगी, क्यों ठीक है न ?" गजेंद्र की उत्तेजना पाकर बालक प्रसन्नतापूर्वक कहता आ रहा था, इसी बीच में माताजी आती दिखलाई दीं। गजेंद्र ने जल्दी से बात बदलकर पूछा 'तूने अपने मास्टर का काम कर लिया न ?'

'हाँ—हाँ' कहता हुआ पीछा छुड़ाकर सुरेश कुत्ते को साथ ले भाग खड़ा हुआ।

× × × ×

पंद्रह-वर्ष की भोली-भाली वधू ने अपूर्व रूप-लावण्य लेकर गृह-लक्ष्मी की तरह घर में प्रवेश किया। माता ने सुरेश को आवाज देकर बुलाया "क्यों रे सुरेश, भाभी से बोलता नहीं है ?" सुरेश झेंप-सा गया। यह चार साल पहले की तारा नहीं है जिसको बड़ी उत्सुकता से वह भैया के लिये देखने गया था और घर आकर उसने कहा था कि वह मेरी ओर देखकर हँसती है। भैया के पूछने पर घंटों जिसकी सुंदरता का पुल बाँध सकता था। अब तो तारा उसके लिये बिल्कुल बदल गई थी। नीची नजर करके उसने संबोधन किया 'भाभी'। तारा ने देखा—यह चार साल पहलेवाला सुरेश नहीं है। वह तो बिल्कुल बदला हुआ है, उसकी जगह अट्ठारह-उन्नीस वर्ष का एक फैशनेबुल ग्रेजुएट खड़ा है। इस छोटे से भाभी संबोधन में वह केवल मुस्करा दी !

सुरेश ने इस सरल हँसी में वही चार साल पहले वाली हँसी के पवित्र भाव पाए। धीरे धीरे यह हिचक भी जाती रही।

× × × ×

एक दिन विधवा माता चंचल सुरेश का हाथ तारा को पकड़ाकर 'देखो तारा, मेरा लाड़ला बेटा सुरेश दुखी न रहे'—फिर सुरेश को यह कहकर 'भाभी को खुश रखना' तथा ऐसी ही और बातें समझाकर अंतिम हिचकी ले इस संसार से चल बसी।

× × × ×

स्नेहमयी भाभी के प्यार को पाकर सुरेश माता की मृत्यु का घाव भूल गया। छः महीने की परिचिता भाभी से वह इतना हिल-मिल गया मानों वह उसकी पुराने जन्म की परिचिता हो। गजेंद्र भी प्रायः दोनों को समझाता रहता। तारा से कहता कि सुरेश का ख्याल रखना और सुरेश से कहता कि भाभी को खुश रखना। उसे दोनों की चिंता थी। पच्चीस-छब्बीस-वर्ष के गजेंद्र में अभी से बड़प्पन के भाव आ गए थे। इतनी अतुल सम्पत्ति का अधिकारी होते हुए भी वह चरित्रवान् और आदर्श था।

सुरेश कालेज से लौटकर आता और आवाज देता "तारा भाभी"। तारा हँसती हुई रूप-शिखा सी आगे आती। दोनों एक दूसरे के पास बैठते। सुरेश अपनी सारी थकावट भाभी की प्रेम-पूर्ण बातों में भूल जाता। फिर प्रसन्नचित्त गजेंद्र आता और तीनों मिलकर खाते-पीते फिर घूमने जाते।

'भाभी, भाभी'—सुरेश ने पुकारा पर तारा कमरे में न थी। एकाएक सुरेश की दृष्टि चौके में बैठी भाभी पर पड़ी। धुएँ के कारण भाभी की आँखें लाल हो रही थीं, चेहरा भी लाल और मुरझाया सा हो रहा था। सुरेश ने धीमे स्वर से पुकारा 'भाभी', तारा की दृष्टि अपराधिनियों की भाँति नीची हो गई। सुरेश ने गंभीर स्वर से पूछा "महाराजिन कहाँ गई?" नीची दृष्टि किए ही तारा बोली—'वह चार दिन की छुट्टी—' 'हूँ, तो यह बात है—शायद

संसार की सब महाराजिनें मर गई'—' वह बड़बड़ाता हुआ आगे बढ़ा। चार कदम आगे बढ़ने पर फिर लौटा और उसने प्रश्न किया—'अपने प्रतिज्ञानुसार सिनेमा के लिये तैयार हो?' डरते डरते तारा ने उत्तर दिया 'पर खाना—' "भाभी, आज बाजार से खा लेंगे" पर फिर सँभलकर ताने के स्वर से बोला—'शायद सब हलवाई भी मर गए हैं, तो पहले मैं उन्हीं की मुर्दनी में जाऊँ, क्यों न भाभी?' तारा निरुत्तर थी। उसने युवक की आँखों में अमीरी का नशा देखा।

भोजन के समय गजेंद्र ने पूछा "तारा, तुम्हारी और सुरेश की थाली?" तारा ने उत्तर दिया कि वह मुझसे नाराज है और अगर मैं खाना खा लूँगी तो मेरे सिर चढ़कर वह कई दिन नहीं खायेगा।

गजेंद्र खाकर चला गया।

तारा सुरेश के कमरे की ओर बढ़ी। वह भी सिनेमा न जाकर उसी प्रकार सूट वगैरह पहिने कुर्सी पर पैर फैलाए आँखें बंद किए पड़ा था। तारा ने धीरे से आवाज दी, 'सुरेश खाना खा लो' पर सुरेश उसी प्रकार पीठ मोड़े आँखें बंद किए पड़ा रहा। तारा लौट आई। वह लौट तो आई पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, उसका ध्यान सुरेश की ओर खिंचता गया—आज वह भूखा है—जलपान भी तो उसने नहीं किया।

सुरेश छत पर 'रेलिंग' का सहारा लिए खड़ा था। 'सुरेश खाना खा लो' पर वह उसी प्रकार अचल रहा। तारा आगे

बढ़ी, सुरेश के हाथों को जोर से पकड़कर बोली 'क्यों तंग करते हो ?'

'भाभी, मुझे भूख नहीं है, नीचे जाओ'। तारा लौट आई। इतना रूखापन! वह चाहता है कि उसकी भाभी कुछ काम ही न करे! वाह रे प्यार!

सुरेश ने तारा को लौटते देखा तो वह और क्रोधित हो उठा। वह चाहता था कि तारा उसकी और अधिक खुशामद करे। सुरेश ने सुना कि तारा नौकर से कह रही है 'खाना उठाकर रख दे। मुझे भी आज भूख नहीं है।' सुरेश चौंका—हैं! तारा भी भूखी है! उसे अपनी भूख नहीं पर तारा की भूख असह्य मालूम हुई। रात के नौ बजे वह नीचे उतरा। तारा आँगन में पलँग पर आँखें बंद किए पड़ी थी। सुरेश ने मृदु स्वर से पुकारा 'भाभी' पर तारा उसी प्रकार पीठ फेरे अचल रही। सुरेश ने धीरे से तारा की पीठ को हिलाया 'भाभी, सच कहता हूँ, कल मेहतर तथा महरी दोनों को जवाब दे दूँगा, तब तू खूब काम करना। अगर अब कभी तू कहीं जाने को कहेगी तब भी नहीं ले जाऊँगा पर अब उठकर खा ले।' अंत में सुरेश ने अपनी रूठी हुई भाभी के दोनों हाथों को पकड़कर उसे बिस्तरे पर बैठा दिया। फिर भी तारा मौन थी। सुरेश ने हारकर अंतिम बाण फेंका 'मैं तुम्हारा कौन हूँ जो कहना मानोगी ?' तारा झटके के साथ उठ बैठी। 'सुरेश, मेरे लिये इन शब्दों

को कभी मत दुहराना—मैं तुम्हारी क्या नहीं हूँ ? भाभी की जगह एक स्नेहमयी भाभी हूँ, माता की जगह माता हूँ, गुरु की जगह गुरु भी हूँ, बहन हूँ और सबसे ज्यादा सुरेश, तुम्हारी मित्र हूँ, तुम्हारे सुख की चाहनेवाली हूँ, तुम्हारे सुख-दुःख की साथिन हूँ, समझे सुरेश !' तारा की आँखों में पवित्र प्रेम की एक ज्योति थी। सुरेश आदर से झुक गया। इसी बीच में गजेंद्र भी आ गया। उसने तारा के अंतिम शब्द सुने। उसके मुँह से सहसा निकल पड़ा "प्रेममयी रमणी"।

फिर तीनों ने साथ साथ खाया। इसी प्रकार सुरेश बच्चों की तरह जरा-जरा सी बात पर भाभी से लड़ता-रूठता पर फिर भी भाभी के बिना उसे एक दिन भी चैन न था।

× × × ×

एक दिन हँसी हँसी में तारा पूछ बैठी 'सुरेश, जब कि मैं और तेरी बहू लड़ा करेंगी तब तू किसका पक्ष लेगा ?' अल्हड़ सुरेश उठा। एक बड़ा-सा पत्थर दिखाकर बोला 'अगर वह तुझसे लड़ेगी तो इसी से उसका सर तोड़ दूँगा।' तारा प्रसन्न होकर बोली 'भाभी का इतना पक्षपात !'

सुरेश की कितनी ही सगाइयाँ आने लगीं पर तारा कुमुद के ऊपर विशेष रूप से आकृष्ट हो गई और यहाँ तक कि शादी करने की प्रतिज्ञा तक कर आई।

तारा सुरेश के कमरे में घुसी। सुरेश ने देखा कि तारा आज बड़ी प्रसन्न है। सुरेश बोला—भाभी, आज खिली क्यों पड़ती हो ?

'सुरेश, मैं तुम्हारी भावी दुलहिन को देख आई हूँ। वह है भी तुम्हारे ही योग्य। बड़ी सुन्दरी, बड़ी सुशीला...।' अत्यन्त व्याकुल हो सुरेश ने बीच ही में टोका 'भाभी'।

तारा घबड़ा उठी। उसने देखा, सुरेश के मुँह पर एक हल्की-सी उदासी छाई हुई है। तारा ने सस्नेह सुरेश के कंधों पर अपनी दोनों पतली सुकोमल बाहों को डालते हुए पूछा—तुम्हें क्या हुआ?

"भाभी, वह तुमसे लड़ेगी। तीन प्राणियों की इस छोटी-सी सुन्दर गृहस्थी में बाधक होगी। भाभी भूल जाओ अपने सुरेश के ब्याह की बात।" सुरेश के अंतिम वाक्यों में निर्णय के से भाव थे।

तारा फिर भी साहस कर बोली 'भाभी की इच्छाओं पर पानी मत फेरो। अब वह एक सुन्दर सी बालिका के हास्य से इस घर को गुंजरित होते देखना चाहती है।" तारा की आँखों में आँसू आ गए—'सुरेश, एक यही इच्छा है जिसको इतने दिनों से दिल में छिपाए हुए थी।' सुरेश भाभी के आँसुओं को पोंछते हुए कहने लगा—भाभी, माता ने मरते समय कहा था कि अपनी भाभी को खुश रखना पर क्या वह मुझे स्वर्गीय माता के इस आदेश का पालन करते देखकर खुश होगी? वह लड़ेगी भाभी तो मैं कैसे सहूँगा!

सुरेश उद्विग्न सा कमरा छोड़कर बाहर चला गया। फिर थोड़ी देर बाद न जाने क्या सोचकर लौटा 'भाभी, मुझे

बाध्य करती हो ?' तारा अश्रु-पूर्ण नयनों से उसी प्रकार खड़ी थी। यह प्रश्न सुनकर घूमी। सुरेश उसके एकदम निकट खड़ा था पर उसका चेहरा रुआसा हो रहा था। तारा उत्तेजित होकर बोली "कह दो, हाँ अपने लिये नहीं मेरे लिये।"

× × × ×

शादी के दिनों में तारा की फुर्ती देखकर सब दाँतों-तले उँगली दबाते। सुरेश मंत्र-मुग्ध सा देव-बाला सी सरल उन्नीस-बीस वर्ष की भाभी की फुर्ती देखता। वह भाभी तारा को तंग करता और तारा के डाँटने पर जरा जरा सी बात पर डरवा देता—'मैं शादी नहीं करूँगा।' तारा मन ही मन खुश होती हुई ऊपरी क्रोध दिखाती—अब तुम्हारी बहू घर में आ गई है, फिर भी झगड़ते हो ?

तारा तरह तरह के कुमुद के चाव के काम करने लगी।

× × × ×

तारा बाहर की आई साड़ियाँ वगैरह तहा रही थी। इतने ही में उसने दर्द भरी आवाज में सुना "भाभी"। वही चिर-परिचित कंठ, पर इतना करुण क्यों! वह बाहर की ओर दौड़ी। उसने देखा, उसका स्नेही सुरेश बच्चों की तरह किवाड़े से सिर टिकाए खड़ा है। घबड़ाकर तारा ने पूछा "क्या हुआ ?" 'तुम इतनी खुश क्यों हो ?' बच्चों की तरह सुरेश ने पूछा। 'पागल, खुशी की ही बात है।

कुमुद जैसी साक्षात् लक्ष्मी मेरी देवरानी बनी 'है' तारा ने हँसकर उत्तर दिया।

'तुम भूलती हो भाभी—पर मुझे दोष मत देना' सुरेश विषाद-भरे शब्दों में बोला।

'क्या हुआ सुरेश ?' आग्रह-पूर्वक तारा ने प्रश्न किया।

'समय आने पर तुम स्वयं समझोगी भाभी, पर अपने सुरेश को कभी दोषी मत बनाना। प्रतिज्ञा करो !'—कहता हुआ सुरेश उठकर चल दिया। उसकी आँखों में आँसू थे।

कुछ ही दिनों में तारा ने देखा कि सुरेश का कहना ठीक है। कुमुद जैसी देखने में है वैसी दिल की नहीं है। वह बड़ी शक्की और आँख में उँगली डालकर लड़नेवाली है।

तारा अपने सुरेश का भविष्य सोचकर चिन्तित हो गई।

× × × ×

एक दिन सबेरे से तारा के सिर में दर्द हो रहा था। सुरेश भी विशेष चिन्तित था। शाम हुई, कुमुद आकर बोली 'घूमने चलो'। सुरेश ने धीरे से उत्तर दिया 'तारा भाभी की तबियत खराब है'। 'मुझे मालूम है' रूखेपन से कुमुद ने उत्तर दिया,—'पर मैं तो चल रही हूँ।'

सुरेश ने निश्चय-पूर्वक उत्तर दिया—कल चलेंगे।

तुनककर कुमुद बोली—'यह क्यों नहीं कहते कि ताराजी के बिना नहीं जाओगे—उनके बिना तुम्हें—'

''चुप रहो कुमुद, जाओ यहाँ से। मेरा समय बर्बाद न करो।',

"मैं चुप रहती हूँ पर जब भाभी से बैठे बातें बनाते हो तब समय नहीं खराब होता है ?"

सुरेश को क्रोध हो आया पर गुस्सा पीकर वह बोला, 'कुमुद, चार प्राणियों की यह छोटी सी गृहस्थी, उसमें भी यह द्वेष और डाह !' कुमुद मुँह बनाकर बोली 'हूँ, तुम्हें मेरी प्रसन्नता की क्या ? तुम तो केवल तारा को—' सुरेश कुर्सी से उठा "चुप रहो कुमुद। न तो तुम तारा को ही समझती हो और न मुझे ही पहचानती हो। माता ने मरते समय मुझसे कहा था कि भाभी को खुश रखना, तभी से मैं तारा को संसार की सब स्त्रियों से ज्यादा चाहता हूँ। मेरे हृदय में श्रद्धामयी भाभी की मूर्ति स्थापित है और कहे देता हूँ.—उसी देवी की कृपा से तुम मेरी बनी हो, उसी की वजह से मैं तुम्हारी इज्जत करता हूँ।"

नागिन की तरह फुफकारती हुई कुमुद बोली "हूँ"। इस हूँ ने जले पर नमक छिड़क दिया। सुरेश ने 'पेपर-वेट' उठाकर कुमुद को मारा। दानवी सी कुमुद—"अच्छा, देख लूँगी। यह सब तारा का ही सिखाया है"—कहती हुई कमरे से निकल आई।

उधर से गुजरती हुई तारा ने कुमुद के अंतिम शब्द सुने। वह चौंकी, पर फिर कुछ सोचकर कमरे में घुसी। सुरेश गुस्से में भरा बैठा था। तारा ने सस्नेह छोटी बहिन के समान सुरेश के हाथों को पकड़कर कहा 'सुरेश, तुमने यह क्या किया ?'

ममतामयी भाभी के स्पर्श को पाकर सुरेश ठंडा पड़ा। 'भाभी, मैंने उसके ऊपर पेपरवेट फेका था, क्योंकि वह तुम्हारे विपक्ष में बक रही थी।'

'सुरेश, उसने मेरे प्रति कुछ कहा था तो मैं निपट लेती—यह शादी मैंने कराई है, तुमने नहीं की—पर कुमुद अभी बच्ची है।' सुरेश दुहराकर बोला—बच्ची है! हूँ, देखने में तुमसे बड़ी है, लड़ने में तुमसे ज्यादा है, झूठी-सच्ची लगाने में बढ़ी-चढ़ी है, तो छोटी किस बात में है?

'सुरेश, शांत रहो। मेरे खातिर तुम्हें उसे मनाना ही पड़ेगा।

'भाभी, तुम यदि आज्ञा देती हो?'

"हाँ" अश्रुओं के भार से दबी पलकों को उठाकर तारा बोली।

× × × ×

तारा के हृदय-साम्राज्य में चिंता ने आक्रमण करना शुरू किया। वह कुमुद को प्यार करती, समझाती, मनाती, जो वह कहती उसे उसी दम पूरा करती पर लड़ाकी कुमुद हर एक बात का उलटा अर्थ लगाती। तारा कुमुद को प्राणों से अधिक प्यार करने की कोशिश करती, केवल इसी भावना से प्रेरित होकर कि वह उसके आज्ञाकारी देवर की स्त्री है। और उधर सुरेश भी कुमुद को केवल इसी लिये चाहता कि तारा की यही इच्छा है कि मैं उसे चाहूँ।

प्रसन्नचित्त तारा कुमुद को खुश करने के लिये नई नई तरह की चीजें बनाकर खिलाती। अगर कभी सुरेश उसे चौके में बैठी देख लेता तो गाल फुलाकर पहले की तरह पूछता 'तुम्हारी महराजिन क्या मर गई है ?' तारा हँसकर कहती—'चल पागल, क्यों बेचारी को मारता है ?' वह आगे बढ़कर भाभी का हाथ पकड़कर चौके से घसीट लाता। गजेंद्र हँसता, पर कुमुद की द्वेषाग्नि से जलती हुई आँखें देखकर सुरेश डर सा जाता।

समय बीतता गया। सरल-हृदय सुरेश एक बड़ी सुंदर साड़ी लाया और दो वर्ष पहले की तरह उसने लापरवाही से वह साड़ी लाकर तारा को दी—'भाभी, कल इसे जरूर पहिनना; नहीं तो तुमसे न बोलूँगा'। तारा ने भी तारीफ करते हुए साड़ी बड़े चाव से रख ली। कुमुद अपमान की ज्वाला से जल उठी।

दूसरे दिन सुरेश ने प्रेम-पूर्वक पूछा—क्यों कुमुद, साड़ी कैसी लगी ?

'मुझे क्या मालूम ?' कुमुद का संक्षिप्त उत्तर था।

सरल-हृदय युवक ने फिर पूछा—एक ऐसी तुम्हारे लिये ले आऊँ ? भाभी की पसंद तो जानता हूँ पर तुम्हारी पसंद ठीक से नहीं मालूम है।

'भाभी को खिलेगी।' कुमुद ताने से बोली।

सुरेश उद्विग्न हो गया—क्या कहा ?

'कुछ नहीं।'

'कुछ कहा तो था।' सुरेश का क्रोध उत्तरोत्तर बढ़ रहा था।

'जो तुमने पूछा था।' मुँह बनाकर कुमुद ने उत्तर दिया।

सुरेश बिगड़ उठा—बेढंगी जंगली कहीं की !

'तो उनके पास जाओ जिन्हें ढंग और सभ्यता आती है।'

सुरेश उन्मादी सा कमरे से निकला। उधर से तारा भी कुछ चीनी के प्याले-तश्तरी लिए निकल रही थी। सुरेश आगे बढ़ा, और तारा के हाथ से प्याले छीनकर दूर फेंक दिए। क्रोध-वश सुरेश और आगे बढ़ा, तारा डर गई। भाभी के नाजुक कंधों को जोर से झकझोर कर सुरेश काँपता हुआ बोला—भाभी, क्या आज्ञा देती हो ? तुम आज्ञा देती गईं और मैं पालन करता गया पर तारा, तुमने कभी आज्ञा देने के बाद कुछ विचार भी किया ? मैंने शादी की, विषैले कुसुम को सूँघा पर तुम्हारे लिये, तुम्हारी खुशी के लिये। भाभी, तुमने मेरी शादी करके मेरी दुनिया उजाड़ दी। मेरी जल्दबाज भाभी, तूने कितनी जल्दी की। न खुद सोचा और न मुझे ही सोचने का अवसर दिया।

ढीठ स्त्रियों की तरह तारा बोली—जाओ, उसे मनाना ही होगा।

'नहीं जाऊँगा भाभी, तुम्हारी कुमुद कहती है कि वहीं जाओ जहाँ ढंग और सभ्यता है। इसलिये यहाँ आया हूँ,

निराश न करो !' थोड़ी देर तक वह एक निर्बल बालक की तरह अपनी मातृ-तुल्य भाभी का सहारा लिए खड़ा रहा, फिर कपड़े पहिनकर बाहर चला गया।

"मेरी कुमुद, तुम्हारी तारा—तुम्हारे ही सुख में सुखी रहनेवाली तारा—तुमसे एक प्रार्थना करती है।"

"क्या कहती हो ?" कुमुद ने रूखेपन से पूछा।

"मेरी सुंदर कुमुद, तुम मुझसे लड़ा करो पर मेरे देवर का लिहाज किया करो। मैंने सासजी के मरने के बाद से उसे अपने हृदय-रक्त से पाला है"—तारा का कंठ भर आया। कुमुद तुनककर बोली "हाँ, अब मेरे कारण तुम्हारी सोने की दुनिया उजड़ गई है तो मेरे साथ शादी ही क्यों कराई ?" तारा क्रोध को छिपाती हुई बोली "क्यों कराई थी ? क्योंकि मैं चाहती थी कि सुरेश की पत्नी आए। मैंने तुम्हारा चटकीला रँग देखा—रीझ गई। जो कुछ किया, मैंने किया; सुरेश ने नहीं, पर फिर भी तुम्हें पाकर मुझे खुशी है। कुमुद, तुम भी खुश रहो।" तारा की आँखों में आग्रह था।

'हाँ, ठीक है'—ताने से कुमुद बोली—तुम अपनी दुनिया बसाओ, मैं अपनी अलग बसाऊँगी।

तारा ने इस व्यंग्य को खूब अच्छी तरह समझा। उसका सिर झुक गया और आँखों से आँसुओं की दो बूँदें टपक पड़ीं। किवाड़ के पीछे खड़े सुरेश ने सब कुछ सुना। अब

उसका चुपचाप खड़ा रहना कठिन हो गया। वह नहीं जानता था कि तानेबाज कुमुद यहाँ तक पहुँच जायगी। धीरे धीरे वह कमरे में घुसा। उसकी ओर बिना दृष्टिपात किए ही तारा कमरे से बाहर निकल आई।

"कुमुद, तुम अपनी दुनिया अलग बसा लो पर याद रखना मेरी, भैया और भाभी की दुनिया एक रहेगी।"

कुमुद तूफ़ान की तरह उठी 'अपने कमरे और आलमारियों की तालियाँ लो। मैं उनकी रखनेवाली कौन हूँ?'—कहकर ज्योंही उसने बड़ा संदूक खोला, वह भौचक्की सी खड़ी रह गई। सुरेश भी आगे बढ़ा। उसने देखा कि जो साड़ी उसने तारा को लाकर दी थी वह उसी प्रकार कुमुद की नई साड़ियों में रक्खी है। उद्विग्नता-पूर्वक सुरेश ने कुमुद को हिलाकर कहा 'यह देख, तेरी प्रेममयी जेठानी!' कुमुद कुछ लज्जित सी हो गई पर चिकनी गुलाब की पँखुड़ियों पर ओस की बूँदें कितनी देर टिक सकती थीं!

× × × ×

सुरेश के परम-मित्र शरद ने घर भर के लोगों को निमंत्रित किया। ठीक समय पर चारों जने पहुँचे। सुरेश ने मित्र को परिचय दिया। वह तारा को पकड़कर बोला—'शरद, यह मेरी स्नेहमयी तारा भाभी है—जिनकी मैं संसार में सबसे ज्यादा इज्जत करता हूँ। मैं अपनी भाभी को प्राणों से ज्यादा प्यार करता हूँ।' सुरेश की आँखों में

स्वर्गिक प्रेम की एक ज्योति सी बिखर गई। गजेन्द्र और शरद दोनों प्रभावित हुए। सुरेश फिर सँभलकर बोला "शरद, यह मेरी पत्नी कुमुद है।" शरद और गजेन्द्र दोनों ने ध्यान दिया कि कुमुद का परिचय देते समय वह शिथिल और थका सा मालूम होता था। कुमुद जल उठी।

सर्दी के दिन थे। रात को वे घर लौटे। तारा कपड़े बदल कर कुर्सी पर बैठी ही थी कि इतने में सुरेश आया 'भाभी, कुछ खाने को दे, मेरा तो सब पच गया'—इतना कहकर ज्योंही वह भाभी को पकड़कर उठाने चला, वह चौंककर दो कदम पीछे हटा मानों उसका हाथ बिजली के करेंट से छू गया हो। तारा उठी, पर सुरेश ने पकड़ लिया "भाभी, तुम्हें क्या हुआ ?" "कुछ नहीं सुरेश" तारा लापरवाही से हँसती हुई बोली। "झूठ बोलती हो ? भाभी, तुम्हारा शरीर जल रहा है, तुम्हें ज्वर है।"

तारा का ज्वर बढ़ता गया। सुरेश और गजेन्द्र दूर दूर से डाक्टरों को ढूँढ़कर लाने लगे। पर किसी की दवा से तारा को विशेष लाभ न हुआ। सुरेश रात-दिन तारा के बिस्तरे पर बैठा रहता। गजेन्द्र समझाता 'मैं डरता हूँ, कहीं तुम भी बीमार न पड़ जाओ।' पर सुरेश एक मिनट के लिये भी तारा के पास से न हटता। उसे जान पड़ता कि कोई उसकी तारा को पकड़ने के लिये आ रहा है। वह

पागलों की तरह तारा के पास बैठा बैठा प्रलाप करता 'मुझे तारा से कौन छीन सकता है ?'

सुरेश डाक्टरों को कभी कभी डाँटता—'बड़े बने हैं डाक्टर। मन में आता है कि सब डाक्टरी दवाओं को फेक दूँ। आप लोग भाभी का जरा सा ज्वर भी नहीं उतार सकते ?' फिर दूसरे ही क्षण अत्यन्त करुण हो कहता 'मेरा सर्वस्व ले लीजिए पर तारा को अच्छा कर दीजिए।' धीमे स्वर से तारा कहती "मैं अच्छी हो जाऊँगी सुरेश।" सुरेश रोकर उत्तर देता 'प्रलोभन देती हो ?'

कुमुद प्रेम का स्वाँग भरकर कहती—"आप क्यों परेशान होते हैं ? क्या जीजी के साथ ही जाने की ठानी है ?" सुरेश बिगड़कर कहता—हट जा सामने से स्वार्थी, तेरी ही कलह से मेरी भाभी की यह हालत है।

एक दिन तारा की तबियत कुछ हलकी मालूम हुई। उसके चेहरे पर एक प्रकार का फुर्तीलापन और अलौकिक सुन्दरता दिखाई पड़ी। देखकर सबको बड़ा संतोष हुआ। सुरेश भाभी के गर्म कपाल पर हाथ फेरकर प्रसन्नता-पूर्वक बोला—'भाभी, तुम अब अच्छी हो जाओगी।' तारा सस्नेह देवर के हाथ को पकड़कर आग्रह-पूर्वक बोली —'सुरेश, तुम्हें याद है—पहले तुम एक गाना अपनी रूठी हुई भाभी को मनाने के लिये गाया करते थे—

मत भाभी से प्रेम बढ़ाना,
जीते जी मर जाना।
पल पल में रूठनेवाली
मत उससे नेह लगाना।
जादूगरनियों की रानी भाभी
मत उससे प्रेम बढ़ाना।

सुरेश, अब आगे याद नहीं आता—तुम्हें वह बात याद है, कितने वर्ष बीत गए जब छोटे से तुम भैया के लिये मुझे पसन्द करने के लिये आए थे! ह-ह तुमने भैया से आकर कहा था कि मैं तुम्हारी ओर देखकर हँसती हूँ, शैतान।' फिर थोड़ी देर रुककर कहना शुरू किया—'सुरेश, उस दिन मैं प्रतिज्ञा करने पर भी सिनेमा नहीं गई थी—तुम रूठ गए थे पाजी कहीं के, तुम भूल गए—उस दिन तुमने मुझे कितने जोर से झकझोर दिया था—' तारा के चेहरे पर भय की मुद्रा अंकित हो गई।

गजेन्द्र चौंका। चेहरे में इतना फुर्तीलापन क्यों! भाषा इतनी स्पष्ट—पर यह पूर्व-स्मृतियाँ क्यों लौट रही हैं? गजेन्द्र ने आवाज दी—'सुरेश, लक्षण ठीक नहीं।' सुरेश उन्मादियों की तरह उठा—'हाँ भैया, बुझने के पहिले दीपक अधिक प्रकाश देने लगता है"—इतना कहकर वह फूट फूटकर रो दिया। गजेन्द्र ने आवाज दी "तारा।" सुरेश झुका "तारा भाभी"! तारा ने एक बार आँखें खोलीं। उसकी दो चमकीली

पुतलियों में गजेन्द्र और सुरेश चमक उठे। कुमुद को आशीर्वाद देने को हाथ उठे "कुमुद, प्रसन्न रहने की कोशिश करो।" पुन: एक बार पतले पतले पीले होंठ हिले—प्रिय...त...म। आँखों की पुतलियाँ अंतिम बार गजेन्द्र की ओर फिरकर सदैव के लिये बंद हो गईं।

सचमुच, बुझने के पहिले दीपक अधिक प्रकाश देकर बुझ ही गया। चिता धधककर बुझ भी गई। सुरेश एकटक उस धुँयें को देखता रहा। उस धुँयें के बीच में से उसे तारा ऊपर उठती दिखलाई दी।

× × × ×

छत पर खड़ा सुरेश एकटक ऊपर की ओर देख रहा था। धीरे से गजेंद्र ने पूछा—'क्या देखते हो सुरेश ?' पूछकर गजेंद्र रोने लगा। सुरेश ने उँगली ऊपर उठाकर कहा—'वह देखो भाभी।' गजेंद्र सुरेश को नीचे पकड़ लाया।

कुमुद बोली 'कहाँ जाते हो ?' सुरेश बिगड़कर बोला "जहाँ ढंग हैं—जहाँ प्यार है—वहीं जाता हूँ।" कुमुद रोकर बोली—मेरी ओर देखो।

सुरेश करुण होकर बोला—अब शायद कभी नहीं देखूँगा। कुमुद, तुम्हें भाभी कितनी आशाओं से ब्याह कर लाई थीं पर तुमने उस नन्हें से प्रेममय दिल को चूर चूर कर दिया। कुमुद, तुमने मेरी भाभी को नहीं पहचाना। तुम जिस दिन से ब्याहकर आईं, वह तुम्हारे पैने तीरों से छिदती

ही गईं पर फिर भी वह तुम्हें प्यार करती थीं क्योंकि तुम मेरी स्त्री हो यही सोचकर।

"तारा भाभी"—"तारा"। सुरेश कमरे से निकल कर भागा। "भैया, सच कहता हूँ बड़ी सुंदर है, गोरी है, खूब बड़ी बड़ी आँखें हैं। भैया, वह मेरी ओर देखकर हँसती है—माँ कहती है कि वह मेरी भाभी लगती है।"

गजेंद्र ने उठकर अपने प्रिय भाई को हृदय से लगा लिया। दोनों भाइयों ने एक दूसरे के हृदय की धड़कन को स्पष्ट सुना। दो दुखी हृदयों की धड़कन और भी तेज होकर एक साथ धड़क उठी—धुक् धुक् धुक्।

"छोड़ दो—छोड़ दो भैया।" सुरेश अलग हटकर खड़ा हो गया और फिर आकाश की ओर उँगली उठाकर बोला—वह देखो धुँआ, भैया, देखो भाभी जा रही है।

फिर वह छत पर जोर जोर से टहलकर पुकारने लगा—तारा भाभी! तारा भाभी!! ओ, मेरी तारा भाभी!!!

काफिर औलाद

बूढ़ा करीम अपने मजहब का बड़ा कट्टर था। खुदा के नाम पर वह बड़े बड़े भयंकर कार्य कर चुका था और करने को तैयार भी रहता था। मजहब के बाद वह एक प्राणी को और प्यार करता था। वह था उसका बेटा। जिस समय वह छोटा-सा बालक तुतलाकर बोलता उस समय बूढ़ा मजहब के नाम पर किए अपने भयानक पिछले इतिहास को भी भूल जाता था। वह उससे इस तरह बातें करता मानों वह बालक ही उसके हृदय की सबसे रहस्यमय वस्तु हो। "मेरा गुलाब, मेरे हृदय का बादशाह, तेरी शादी होगी—बहू आएगी खूब सुंदर सी।" इतना सुनते ही छोटा सा बालक तुतलाकर बड़ी मस्तानी अदा से सिर हिलाकर पूछता "तुमाले जैछी छुंदल—बली दालीवाली ?" (तुम्हारे जैसी सुंदर—बड़ी दाढ़ीवाली ?) यह सुनकर बूढ़े की आँखें प्रसन्नता से चमक उठतीं। वह हँसता हुआ कहता "हाँ, मेरे जैसी।" बालक रूठता, मचलता और आग्रह करता "तो अबी कलो न !" (तो अभी करो न !) बूढ़ा हँसता, उसे अपनी कल्पना सजीव सी लगती और उसे घर में

उन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरी बालिका का हास्य सुन पड़ता। वह आँखें बंद कर लेता। छोटे से घर में केवल दो ही प्राणी थे इसलिये तीसरे का आना कितना सुखकर था।

करीम छोटे से बालक को कुरान-शरीफ पढ़कर सुनाता और अपने मजहब की बातें समझाता। वह कहता था—बीज बोने ही से तो एक दिन पेड़ खड़ा नजर आएगा। इसलिये वह अभी से उस बालक में कट्टरता के बीज बो देना चाहता था ताकि वृक्ष मजबूत उगे। वह बालक को अपने से ज्यादा कट्टर मुसलमान बनाना चाहता था।

× × × ×

एक दिन चारों ओर से त्यागी हुई करीम की चचेरी बहिन, अपने साथ अपनी एक छोटी सी बालिका को हृदय से चिपकाए, करीम से रो रोकर आश्रय माँगने लगी। किंतु करीम बराबर आनाकानी करता रहा।

"भैया करीम, मुझे अपने पापों का प्रायश्चित्त करने दो, आखिरी दिन खुदा के नाम पर बिताने दो।" करीम बोला "तुमने तो हिंदू धर्म अपनाया है।" वह बोली—अपनाने गई थी पर अपना न सकी। वह धर्म का नहीं, 'उनका' मोह था। दरिया उस समय चढ़ाव पर था, आगा देखा न पीछा, बस बह पड़ी। गंगा-यमुना की दो धाराएँ एक होने गई थीं पर गंगा गंगा ही रही और यमुना यमुना ही रही।

"पतिता हो—काफिर से मुहब्बत!"

"करीम, उन दिनों की याद न दिलाओ। यह मेरी पुत्री—इसे मैं चाहती हूँ करीम"—कहकर उसने बालिका को भयभीत होकर हृदय से सटा लिया।

"करीम, खुदा तुम पर खुश होगा।" अंत में करीम के दिल में बात बैठ गई। पतिता को उसके कर्मों का प्रायश्चित्त कराना ही चाहिए। उसने उसे अपने घर में आश्रय दे दिया—आखिर थी तो बहिन ही!

× × × ×

दो साल बीत गए। उषा ने अँगड़ाई ली। अलसाई हुई वह दिनकर का स्वागत करने को चल दी।

"वाह, यह घर तो मेरा है।" ऐंठती हुई अचला ने कहा।

"चल चल, बड़ी बनी है कहीं की रानी। यह घर तो मेरा है। मेहनत मेरी ज्यादा लगी है।" क्रोध से काँपते हुए हमीद ने कहा।

आखिर झगड़ा बढ़ ही गया। क्रोध में आकर हमीद ने बालिका के गालों पर एक थप्पड़ मार दिया। कपोल रक्तवर्ण हो गए। वह मानमयी छोटी सी चंचल बालिका क्रोध से चल दी। बालक ने व्याकुल स्वर से पुकारा "अचला, क्या जोर से लग गई?" गाल फुलाकर आँखें तरेरती हुई रूठी बालिका चिल्ला पड़ी—हाँ हमीद, तुम कितने जोर से मारते हो?

"अचला, तू जाती कहाँ है? ले तू मुझे मार ले।"

"अच्छा हमीद, अब तो मुझे नहीं मारोगे न ?"

"नहीं अचला, अब कभी न मारूँगा।"

रूठने के बाद मेल होता। उस बालू के घर की रानी बनती अचला और राजा हमीद।

झोपड़ी के द्वार पर खड़ी प्रौढ़ा हँस दी। कितने भोले हैं ये बालक! पर अंतिम दृश्य ने उसके हृदय पर एक भीषण आघात किया। वह सोचने लगी—हमीद राजा और मेरी पुत्री अचला रानी! नहीं, यह असंभव है। उसकी आँखों के आगे उसका अतीतकाल घूम गया। एक समय था जब वह सुंदरी थी। फिर उसके आगे अचला के पिता की तस्वीर आई—सुन्दर, बलिष्ठ पर हिन्दू। धीरे धीरे उसने डरते डरते बालिका की ओर देखा, कैसी निर्दोष और भोली, चाँदनी सी चंचल बालिका है! हमीद का पिता कट्टर मुसलमान है और वह एक पतिता मुसलमानिन! यह संबंध जितना सुंदर है उतना ही असंभव भी। करीम उससे सहानुभूति अवश्य करता है पर क्या वह इस संबंध को पसंद करेगा? असंभव!

× × × ×

अचला ने आँखें खोलीं। उसने देखा, उसकी माँ भी पिता के पास पहुँच चुकी थी। निःसहाय भोली बालिका का रुदन देखकर बूढ़े का हृदय पिघल गया, सोई हुई ममता अचानक जाग पड़ी। वह बालिका को पालने लगा। कभी

कभी वह बेचैन हो जाता। वह सोचता, हिन्दू बाप की बेटी अचला—काफिर-पुत्री ! इतना सोचते सोचते बूढ़े की शान्ति भंग हो जाती, वह पागल हो उठता। किंतु अचला का मुँह देखते ही वह भूल जाता—यह मेरी बेटी है या काफिर की।

× × × ×

धीरे धीरे दोनों बालक और बालिका बढ़ते ही गए। खेल-कूद, रूठने और मनाने के दिन बीत गए। बालू के घरौंदों की जगह हवाई महल बनने लगे। बचपन के अल्हड़-पन को बेंचकर बड़ी सुंदर नई नई आशाओं को खरीदा। उस राज्य में प्रवेश किया जिसकी कल्पना ही प्यारी होती है। प्रत्येक वस्तु में आकर्षण होता है और आँखों में मादकता छा जाती है। हृदय-रूपी राज्य में सुंदर कल्पनाएँ राज करने लगती हैं। हर एक वस्तु को नई दृष्टि से देखा जाता है—जल को भी मदिरा के पात्र में उड़ेल उड़ेलकर पिया जाता है। इसी सुंदर बेला में दोनों ने एक दूसरे को देखा; आमने-सामने प्रत्यक्ष। दृष्टि बिना प्रयास ही नीची हो गई—दोनों ही अपने अपने को भूल गए।

हमीद जब बुलाता "अचला", उसकी वाणी में कंपन-सा होने लगता, हृदय में एक मीठा मीठा-सा दर्द होने लगता। हमीद के मुँह से अपना नाम सुनकर अचला बेहोशी का सा अनुभव करती।

दोनों ने इस परिवर्तन को देखा और समझा।

× × × ×

धीरे धीरे संध्या-सुंदरी ने भी अपना घूँघट हटाया। शायद वह भी इस परिवर्तन को देखना चाहती थी।

"समझी अचला ?" चौंकती हुई अचला ने उत्तर दिया "हाँ।" हमीद पढ़ाता ही गया। बाबर के चार पुत्र थे हुमायूँ, मिरजा हिंदाल, असकरी और कामराँ—।" अचला देखती तो पढ़ाते हुए मास्टर की ओर थी पर सोच रही थी—क्या सचमुच हमीद चित्रकला सीखने बंबई जायगा ? मैं भी जाने की कोशिश करूँगी। एक साल बाद तो आ ही जायँगे। पर अब्बा कल उस आदमी से कैसे कह रहे थे कि इसकी शादी कर दूँगा—है तो आखिर काफिर-पुत्री—ऊँह, बड़े बने हैं शादी करनेवाले।—"अचला, बता तो बाबर के पुत्रों के नाम और उनके विषय में ?" अचला चौंकी "किसके ? कैसे पुत्र ?" "अरे पगली, बाबर के पुत्रों के विषय में कुछ सुना था या नहीं ?"

अचला ने आँखें ऊपर उठाईं और बोली—हमीद, मैं किसी के पुत्रों के विषय में क्या जानूँ ? मैं उनकी माँ तो थी ही नहीं।

"तो मेरा आज का पढ़ाया बेकार गया—फिजूल इतना बका।" हमीद सोच में पड़ गया। कैसा परिवर्तन ! देखती तो मेरी ओर है, शब्द कानों में पड़ते हैं पर ध्यान और ही

कहीं रहता है। किंतु जब वह मेरी ओर कुछ देर तक देखती रहती है, तब मैं घबड़ाकर उल्टा-सीधा क्यों पढ़ जाता हूँ ?

"क्या सोचते हो हमीद ?" पछताती हुई अचला याद करने की कोशिश करती।

"कुछ नहीं अचला। कल फिर से पढ़ा दूँगा।"

"नहीं हमीद, मुझे याद आ गया, सुनो। बाबर का एक पुत्र था कैमरा...दूसरा अक्सर...तीसरा—"

हमीद जोड़ता "तीसरा पुत्र 'हमेशा' और उनकी माँ अचला।" सरला अचला बिना कुछ सोचे-समझे कहती—"बाप तुम।" दोनों ही हँसने लगते।

संध्या शर्माकर घूँघट ढक लेती।

× × × ×

"जाओ हमीद, पर मेरा मन कैसे लगेगा ?"

"अरी अचला, एक साल बाद तो आ ही जाऊँगा।"

"जाओ न ! बार बार पूछते क्या हो ?" अचला ने मुँह फेर लिया। उसकी आँखों में आँसू थे।

हमीद ने जबर्दस्ती उसका मुँह सामने की ओर कर दिया। वह काँप उठा—रोती हो ? अचला! मेरे बचपन की साथिन !

बड़े बड़े प्रयत्नों के बाद मेल हुआ, रूठी हुई मानिनी हँस दी।

"अच्छा हमीद, मेरे लिये क्या क्या लाओगे ?"

"तुम्हारे लिये सुंदर सुंदर चित्र बनाकर लाऊँगा।"

"जाओ, भूलना नहीं!"

अचला ने तारे गिन गिनकर कितनी ही रातें बिता दीं और घंटे गिन गिनकर कितने ही दिन बिता दिए। वह भूली सी निर्जीव बैठी रहती। अतीत की सुंदर स्मृतियाँ सिनेमा की तस्वीरों के समान उसकी आँखों के सामने नाचा करतीं और फिर छिप जातीं। उसे जान पड़ता हमीद उसे पुकार रहा है। "हाँ, मैं आई" कहकर वह दौड़ती, जगह जगह ढूँढ़ आती पर वह उसका भ्रम था। वह क्रोध करती, मान करती पर मनानेवाला न था।

उधर लोग देखते, चित्रकार हमीद अनमना सा रहता। स्वप्न में बातें करता "हैं, अचला रोती हो?" वह आँसू पोंछने को हाथ बढ़ाता। स्वप्न टूट जाता और बिखर जातीं प्रिया की प्रिय स्मृतियाँ।

समय बीतता गया। साल भर के पहाड़ से दिन भी बीत गए। वह घर लौट आया, लोगों ने पुष्प-वृष्टि की। हमीद ने आँखें ऊपर उठाईं, पुष्प-वृष्टि करती हुई अचला की दोनों आँखों में उसकी आँखें उलझ गईं। वह चिल्लाया "अचला।" अचला ने हँसकर कहा "चलो हमीद, घर चलें।" दोनों ही इतने दिन के संचित क्रोध को भूल गए। इस मिलन ने इतने दिनों के गहरे घावों को भर दिया।

× + × ×

"चित्रकार"।

"चित्रकार की तूलिका"।

"भावुक चितेरे, मेरा चित्र खींचोगे?"

"नहीं अचला—न खींच सकूँगा"।

"क्यों हमीद?"

"बोलो अचला, तुम इतनी अनमनी सी क्यों रहती हो?"

"कुशल चित्रकार, तुम्हीं बताओ"।

"बताओ अचला?"

"सुनो हमीद, मैं काफिर-पुत्री हूँ।"

"अचला।"

"हमीद, मुझे भूल जाओ—काफिर-पुत्री को भूल जाओ।"

"नहीं नहीं, तुम्हीं तो चित्रकार की कला हो।"

दोनों भूल गए। हमीद ने अचला के विशाल सुंदर नयनों में अपना भविष्य पढ़ा। वह काँप उठी। वे भूल गए कि इन दोनों के अतिरिक्त घर में कोई तीसरा भी है—जिसकी दो चमकीली कठोर आँखों ने सब कुछ देख लिया है और कानों ने सब कुछ सुन लिया है।

बूढ़ा काँप उठा। काफिर की बेटी के साथ मेरे पुत्र की शादी! नहीं! कभी नहीं!! असंभव!!! बूढ़े ने एक भयंकर निश्चय किया। एक बार वह खुद काँप उठा पर मजहब उसे प्यारा था—वह हमीद को कट्टर मुसलमान बनाना चाहता था।

बिजली कड़क रही थी। घनघोर वर्षा और भीषण अँधियारी थी। अचला अपने कमरे में जा छिपी।

"अचला—अचला!" बूढ़ा कड़क उठा—मैंने तुझे आश्रय दिया, पाल-पोसकर बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया, अब जहाँ चाहे तू वहाँ जा सकती है।

अचला काँप उठी—"अभी"। प्रतिध्वनि हुई—"अभी"। बिजली कड़की "अभी।" गर्विता अचला उठकर चल दी। चारों ओर अंधकार था। माखन-सी कोमल, फूल-सी नाजुक अचला अंधकार की ओर बढ़ी जा रही थी। पता नहीं, कहाँ?

हमीद ने कमरे की ओर पैर बढ़ाया। किसी भावी आशंका से वह काँप उठा। उसने आवाज दी—"अचला-अचला।" पर उसके उत्तर में मुँह बनाती हुई रूठती हुई वह न आई। हमीद ने सोचा—आती ही होगी—कहीं गई होगी। आज उसे उसका चित्र दिखलाऊँगा, कितनी खुश होगी। इसी प्रकार इंतजार में तीन घंटे बीत गए। उसकी दृष्टि किवाड़े की ओर लगी हुई थी। ज्यों ज्यों समय बीतता गया, हमीद का क्रोध बढ़ता गया।

"अचला, ले तू रोज मान करती थी आज मैं मान करता हूँ। रोज मैं मनाता था आज तू मनाना।" वह पीठ मोड़कर बैठ गया।

अब उसके लिये इंतजार करना कठिन हो गया। वह बूढ़े के पास दौड़ा गया "अब्बा, अचला कहाँ है?" बूढ़े

की आँखों के भाव कठोर थे। वह बोला—हमीद, वह काफिर की बेटी है। मैंने उसे निकाल दिया। हमीद, वह अपना आश्रय ढूँढ़ लेगी—अकल तो उसमें बहुत है।

हमीद चौंका—"अब्बा, तुमने यह क्या किया? उसे बचपन ही में मार डालते। इस उमर में अनाथ की तरह छोड़ देना कहाँ तक ठीक है?" वह किवाड़े की ओर दौड़ा पर बूढ़े ने पकड़ लिया—तुम उसके पुत्र हो जिसने मजहब के नाम पर अपने को मिटा दिया।

हमीद कड़क उठा—मैं तुम्हारे मजहब से घृणा करता हूँ। छोड़ दो, घृणा करता हूँ।

"केवल उस काफिर-पुत्री के लिये?"

"हाँ—हाँ।"

"तो हमीद, अचला तुम्हें नहीं मिलेगी। वह जहाँ भी होगी, मैं उसे खतम कर दूँगा।"

पता नहीं, हमीद में कहाँ से शक्ति आ गई। जवानी का जोश उमड़ पड़ा—वह बूढ़े को धक्का देकर भागा।

बूढ़े करीम के सिर में, पकड़ा-धकड़ी के कारण, चोट लग गई थी। उसका सिर घूमने लगा। वह सिर पकड़कर द्वार पर बैठ गया और उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। "ओफ जिसको पालने में अपने को मिटा डाला—वही कह गया कि मुझे तुम्हारे मजहब से घृणा है।

काफिर की औलादो !" उसका क्रोध तरल होकर आँखों के रास्ते बहने लगा।

× × × ×

"अचला, यहाँ क्यों पड़ी है ?" वह भारत का महान् चित्रकार अचला की चेतनाहीन देह को हाथों पर उठाकर आगे बढ़ा।

अचला की चेतना लौटने लगी। हमीद को पास देखकर संतोष हुआ, फिर दूसरे ही क्षण वह रोकर बोली—हमीद, तुम यहाँ क्यों आए ? मैं काफिर की बेटी हूँ। जाओ, अब्बा अकेले होंगे। इस हालत में उन्हें अकेला न छोड़ो।

"अचला, जब वे तुम्हें इस हालत में अकेले छोड़ सकते हैं तो मैं भी उन्हें छोड़ सकता हूँ।" दुखी होकर चित्रकार बोला।

"मुझे भूल जाओ।"

"अपने को भूल सकता हूँ पर तुम्हें नहीं।"

"हमीद, क्या करते हो ?"

"जो मुझे करना चाहिए।"

समय बीतने लगा। हमीद और अचला दोनों ही सुखी थे पर फिर भी वे कभी कभी अत्यंत उदासीन हो उठते। अचला को बूढ़े अब्बा का कंठ सुन पड़ता "बेटी दीपक जला दे।" उसे जान पड़ता अँधेरे घर में बैठा बैठा उसका अब्बा पुकार

रहा है "अचला बेटी, दीपक जला दे।" उसकी आँखों में आँसू आ जाते।

उधर हमीद को ऐसा लगता माने उसके अब्बा मीठे स्वर से कह रहे हैं "बेटा, जरा मुझे मसजिद तक पहुँचा तो आ।" वह उद्विग्न हो उठता—उसकी आँखों के आगे बार बार वह दृश्य घूमने लगता। उसके अब्बा दरवाजे पर खड़े पुकार रहे हैं—बेटे हमीद, मुझे मसजिद तक छोड़ तो आ।

हमीद और अचला दोनों ने यह स्वप्न में भी न सोचा था कि इस कहानी का अंत इतना दुःखदायी होगा।

किसी तरह नौ दिन बीत गए। दोनों ही अब्बा को देखने के लिये बेचैन हो गए। हमीद बोला "अचला, मैं जरा जा रहा हूँ—लोगों से ही चुपके से जरा अब्बा की खबर पूछ आऊँ।" अचला बोली—मुझे भी ले चलो।

दोनों अपनी चिर-परिचित जगह पर पहुँचे। घर का छोटा सा दरवाजा दिखाई देने लगा। हमीद से न रहा गया, वह घर में घुस गया। अचला दरवाजे पर खड़ी हो गई—वह तो निर्वासित है, उसका आत्माभिमान जाग गया।

बूढ़ा खाट पर पड़ा पड़ा कराह रहा था—कौए बेचारे कोयल के अंडों को अपने ही अंडे समझकर कितने प्यार से सेते हैं पर उसमें से निकलते हैं वही कोयल के बच्चे।

हमीद खाट पर झुका—अब्बा-जान।

"काफिर-औलाद, फिर लौट आए ? अच्छा ही हुआ आ गए, मुझे आशा थी कि एक बार तुम जरूर आओगे।"

"मैं काफिर-औलाद नहीं, तुम्हारा ही बेटा हमीद—"

"तुम मेरे मजहब से नफरत करते हो ?"

"अब्बा—"

"हमीद, तुम्हारा कसूर नहीं; तुम्हारे जन्म का कसूर है। तुम जो हो वही रहोगे। शेर भी कहीं हाथियों के साथ पाला जाकर हाथी हो सकता है ? नहीं हमीद, जात का बड़ा असर पड़ता है।"

धीरे धीरे अचला भी आकर खाट पर बैठ गई।

"तुम भी आ गईं ? काफिर-औलादो, तुम्हें अपना बनाना चाहा था पर रहीं वही जो थीं।" बूढ़े की आँखें चमकने लगीं।

"लो इसे पढ़ो—अपने अब्बा को भूल जाओ"—कहकर बूढ़े ने बिस्तरे के नीचे से एक चिट्ठी निकालकर काँपते हाथों से हमीद को दी। हमीद ने हाथ बढ़ाकर चिट्ठी ले ली। बूढ़ा करीम उठा, लकड़ी टेकता-टेकता धीरे-धीरे घर से बाहर हो गया।

हमीद ने चिट्ठी खोली, अचला भी पढ़ने को झुकी—

"बेटा हमीद,

"तुम्हें बेटों से बढ़कर पाला था। कट्टर मुसलमान बनाना चाहा था पर पौधा उसी का उगा जिस जात का

बीज पड़ा था। तुम्हें ताज्जुब होगा हमीद कि तुम हिंदू की औलाद हो।

"एक आदमी से मेरी दुश्मनी थी। वह हिंदू था। उस समय मेरी स्त्री जिंदा थी। मैंने उस हिंदू को कत्ल किया। घर में तीन ही प्राणी थे, तुम्हारे पिता-माता और दो-तीन महीने के तुम। मेरी स्त्री ने सुना, वह ख़ूब रोई और मुझे बुरी-भली सुनाने लगी। हमीद, मेरी स्त्री बड़ी नेकदिल, शरीफ औरत थी। एक दिन मुझसे छिपाकर वह चुपके से तुम्हारे घर गई। तुम्हारी माता ने तुम्हें मेरी स्त्री की गोद में डाल दिया और बोली 'लो इसे भी कत्ल कर डालो। जब इसका पिता ही न रहा तो यह अभागा रहकर क्या करेगा ?' एक बात लिखना भूल गया—तुम्हारी माता को यह न मालूम था कि यह उसके पति के ख़ूनी की स्त्री है। उसने मेरी स्त्री को शरीफ, दयावान् तथा पुत्रहीन देख-कर अपना बेटा सौंप दिया। मेरी स्त्री प्रसन्न होकर तुम्हें ले आई और प्रेम से पालने लगी।

"किसी को इन बातों की जरा भी खबर न हुई। मुझसे मेरी स्त्री ने कहा कि यह मेरी सहेली का पुत्र है, मैंने इसे गोद लिया है। मैं भी बालक को पुत्र के समान प्यार करने लगा। तभी से तुम मेरे पुत्र प्रसिद्ध हो गए।

"बालक बढ़ता गया पर मेरी स्त्री सूखती गई। अपने जीवन के अंतिम दिनों में उसने मुझसे प्रतिज्ञा करवाई कि

हमीद को प्राणों से ज्यादा प्यार करना, यही मेरी अंतिम इच्छा है। हमीद, मैं अपनी स्त्री को बहुत अधिक चाहता था। धीरे धीरे मरने के कुछ घंटों पहले उसने सारी सच्ची घटना सुना डाली। तब तक हमीद तुम्हारी माँ के मरने की खबर भी मैं सुन चुका था। उसके बाद मैंने अपनी स्त्री के स्मृति-स्वरूप तुम्हें बेटों से ज्यादा प्यार किया।

"तुम बढ़ते गए, मैंने सोचा था तुम्हें कट्टर मजहबी बनाऊँगा पर तुम—पता नहीं क्यों—मुसलमानी मजहब से नफरत करने लगे थे। काफिर की बेटी अचला के आ जाने से यह नफरत दिनोंदिन बढ़ती ही गई।

"दुनिया तुम्हें मेरा पुत्र समझती है—एक कट्टर मुसलमान का पुत्र। जिस दिन वह तुम्हें अचला के साथ शादी करते देखेगी उस दिन मैं कहीं का न रहूँगा। सभी उँगली उठाकर कहेंगे—करीम का बेटा...

"इसलिये हमीद, मैं तुमसे नाता तोड़ता हूँ। मैं अचला को प्यार अवश्य करता हूँ—पर मजहब से ज्यादा नहीं।

"काफिर-औलादो, शादी के बाद अपने नापाक मुँह से अपने कट्टर मजहबी अब्बा का नाम मत लेना। वह मुसलमान है......

तुम्हारा करीम।"

हमीद के हाथों से पत्र गिर पड़ा पर उसने फिर से उसको उठाकर मोड़कर अपनी जेब में रख लिया। फिर

उसने सस्नेह अचला का हाथ पकड़ लिया—"चलो अचला चलें।"

चित्रकार शांति और गंभीरता की मूर्ति बना पर कुछ प्रसन्न सा अपनी भावी पत्नी अचला का हाथ पकड़े एक सुंदर-सी नई दुनिया बसाने चल दिया।

उधर बूढ़ा करीम लकड़ी टेकता, बड़बड़ाता हुआ, मस-जिद की ओर बढ़ा जा रहा था—

"कहाँ काफिर-औलादें भी अपनी हो सकती हैं?"

बाबूजी, मजदूर चाहिए ?

घने कुहरे की धुँधली छाया को बेधती हुई सर्दीली अँधेरी रातों में भी, जब कि सारी अमीरी दुनिया गर्म रेशमी लिहाफों में पड़ी उन्मादिनी निद्रा की गोद में मस्त सोया करती है, सूने अनंत को गुँजाती हुई छोटी छोटी गलियों और सड़कों में गाड़ियों, टाँगों तथा इक्कों इत्यादि सवारियों के पीछे पीछे दौड़ती हुई 'छायाएँ' अत्यंत करुण हो कितनी आशा और व्यथा लिए पुकार उठती हैं "बाबूजी, मजदूर चाहिए ?" दौड़ते हुए रामू के कदम सहसा धीमे पड़ गए। उसने सुना, गाड़ी के भीतर से आवाज आई "नहीं चाहिए।" कदम धीमे पड़ते पड़ते भी पता नहीं किस लोभ से एकदम न रुके। पुनः एक कर्कश तेज आवाज गूँज उठी "एक बार कह दिया नहीं चाहिए।" शब्द गूँज उठे "नहीं चाहिए"। रामू लौट पड़ा।

इस कड़ाके की सर्दी में जब कि संसार के ऐश्वर्यवानों ने एक रजाई के ऊपर दूसरी रजाई ओढ़ ली, तब उसी हाड़-मांस के बने रामू ने लापरवाही से बदन पर लपेटा हुआ वह

फटा सा गमछा भी उतारकर रख दिया। अब वह फुर्ती से दूसरी गाड़ी का इंतजार करने लगा।

यही रामू का जीवन था। यही उसकी निरन्तर रटन थी—"बाबूजी, मजदूर चाहिए?" इन्हीं शब्दों के बल पर वह कमाता था। थका हुआ रामू जब इन शब्दों का उच्चारण करता तब उसकी शिथिल आँखों के आगे आशा बनकर ताँबे के कुछ टुकड़े चमक पड़ते। कुछ पैसे ही उसका उत्साह था और परीक्षक के मुँह से 'हाँ' या 'ना' सुनना ही उसका परीक्षा-फल था। पैसों के लिये कितनी घोर तपस्या थी—कितनी कड़ी परीक्षा थी।

आशा और निराशा के इस तूफान के साथ लड़ते लड़ते रामू के कितने ही वर्ष बीत चुके थे। रात्रि को जब घना अंधकार फैल जाता—तब वह चौंकता और बड़े यत्न से कुछ पैसे खोंसे दुखी पर उत्साहित सा घर की ओर कदम बढ़ाता। लम्बा रास्ता, सघन काले वृक्ष और सँकरी पगडंडी। वह और अधिक लंबे कदम बढ़ाता। आगे, पीछे सर्वत्र अंधकार—पर दूर उस गाढ़े अंधकार में उसके आगे बलिष्ठ हँसती हुई स्त्री रधिया चमक जाती और पैरों से लिपटे हुए बालक पुकार उठते "का लाए हौ कक्कू?" रामू के थके शरीर में विद्युत् की शक्ति भर आती। वह जल्दी जल्दी पैर बढ़ाता घर की ओर दौड़ता। उसे दूर से ही देखकर बच्चे दौड़ते। वह उन्हें गोदी मे उठाकर प्यार

करता और फिर हँसती हुई रधिया उसे हुक्का भरकर देती। अपने कष्टों को छिपाता हुआ रामू उसे इधर-उधर की कुछ घटनाएँ सुनाता। रधिया हँसती और धीरे धीरे अपनी भी दिन-चर्या सुना जाती। इस प्रकार दो परिश्रमी प्राणियों का दिल हलका होता। रात्रि को रधिया उसे बाजरे की मोटी रोटी देती। वह प्रसन्नता से खाकर चल देता और फिर मित्र-मंडली में बैठकर जोर जोर से 'बिरहा' और 'होली' गाता। इतना मस्त हो जाता कि घर-द्वार सब भूल जाता।

रात को रामू अपने फूस के बिस्तरे में पड़ा स्वप्न देखता–वह गाड़ियों के पीछे पीछे चिल्ला रहा है "बाबूजी, मजदूर चाहिए?" फिर उसे मिलते हैं चार पैसे—एकदम चार। रामू आशीर्वाद देने को मुँह खोलता। उसका स्वप्न टूट जाता और वह अपना बिस्तरा छोड़कर उठ बैठता। जिस समय सभ्य कहलानेवाला संसार स्वप्नों की सुंदर दुनिया में विचरा करता है, उस समय रामू के कदम अपनी परिचित जगह की ओर बढ़ते और रोज की तरह सवारियों के पीछे पीछे ध्वनि गूँज उठती—बाबूजी, मजदूर चाहिए?

कैसी विचित्र रटन है।

× × × ×

"ओफ, बाबू क्या देख के नहीं चलते हो?" रामू दर्द से कराह उठा। गाड़ी में से एक शानदार आदमी ने निकलकर एक रुपया रामू के जलते हाथ पर रख दिया।—एक

रुपया—रामू मारे खुशी के अपना दर्द भी भूल गया। "नहीं बाबू, ज्यादा चोट नहीं लगी है—भगवान् आपका भला करें।" रामू ने शीघ्रता से लोगों की नजर बचाकर वह रुपया कमर में कसकर आठ-आठ गाँठें देकर बाँध लिया।

खुशी से पागल रामू ने सोचा—आज वह खूब ताड़ी पिएगा—रधिया कितनी खुश होगी; नहीं-नहीं, ताड़ी नहीं पीऊँगा। उसे रधिया को लाल-लाल साड़ी खरीदने के लिये दूँगा—खूब खिलेगी...इन्हीं स्वप्नों में लीन वह घर पहुँचा। चमकता हुआ रुपया उसने चट से रधिया के हाथ पर रख दिया। रधिया खिल पड़ी और झट से पूछ ही तो बैठी कि कहाँ से लाए। बात बनाकर रामू बोला "एक अमीर बाबू का बोझा ढोया था, उन्होंने दया करके दिया है।" रामू पैर के ऊपर से पहिया निकल जाने की बात भूलने की कोशिश करने लगा।

ज्यों ज्यों समय बीतता गया, पैर का दर्द भी बढ़ता गया। अंत में रात को दर्द इतना बढ़ा कि रामू को रधिया से असल हाल बताना ही पड़ा। पैर सूजकर उग्र रूप धारण कर रहा था और शरीर जलकर अंगारा सा गर्म हो रहा था। सारी बात जान लेने पर रधिया ने उस रुपये को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए उठाकर अलग रख दिया, और उस दयावान् बाबू को, जिसको कुछ घंटों पहिले उसने अनेक आशीर्वाद दिए थे, वह अब गालियाँ देने लगी।

रामू की दशा बिगड़ती ही गई। उसे मजदूरी पर गए करीब हफ्ता भर हो गया। बीमारी से घर का एक एक पैसा समाप्त हो गया। बड़ा लड़का भूख से व्याकुल रहने लगा और, छोटा लड़का दूध के लिये तड़प उठा। रधिया निर्जीव सी, सब कुछ भूली, गाँव के देवी-देवताओं की मनौती मनाती फिर रामू की खाट का सहारा ले बैठी रहती। जब रामू को होश आता तब वह कहता "काहे रधिया, तू का हमरे साथ मरिहौ?"--रधिया मुँह पर हाथ रख देती और "नाहीं, हमार खातिर, बच्चन की खातिर, ऐसी बात जबान से काहै निकालत हौ?" कहते कहते उसकी आँखों से आँसू के दो बड़े बड़े बूँद ढुलक पड़ते। वह खाए क्या? जब घर में कुछ हो तभी न! अड़ोसी-पड़ोसी कुछ पैसों से रधिया की मदद करते पर वह सब पैसे दवाइयों में खर्च कर देती।

× × × ×

आज रामू की अवस्था अधिक खराब थी। रोती रोती रधिया देवी के मंदिर में दौड़ी--"देवी माई तोहे चुँदरी पन्हियैं।"

इधर रधिया माता को मना रही थी, उधर से बड़ा लड़का दौड़ा आया "माई, गजब हुई गवा--" रधिया ने आगे कुछ भी न सुना और सीधे घर की ओर दौड़ी। वह अपने सुहाग की ओर से शंकित हो गई। ज्यों ही उसने घर में प्रवेश किया, देखा कि उसके नन्हें फूल से पुत्र को लोग बाँधने की तैयारी

कर रहे हैं। वह आश्चर्य से खड़ी रह गई; आँसू एक भी न टपका।

क्या मृत्यु का आना इतना सरल है ? उसकी आँखें बाहर निकल आईं मानों उन्हें विश्वास ही न हो कि यह क्या हो गया। किसका, कैसा शव ? उसकी हृदय-रूपी दीवाल में एक ऐसी कील आकर गड़ गई जिसके गड़ने की उसे कभी संभावना न थी। वह रो उठी। शव चला गया पर वह उसी प्रकार आँखें निकाले एकटक उसी ओर देखती रही। आखिर विश्वास की भी सीमा होती है ?

बेहोशी में रामू बड़बड़ाया "रधिया काहे ठाढ़ी है ?" रधिया रामू की ओर बढ़ी और पत्थर की मूर्ति की तरह उसकी खाट पर आकर बैठ गई, मानों कुछ हुआ ही न हो।

दो दिन बीत गए, तीसरी रात रामू की देह भट्ठी की तरह जलने लगी। वह दर्द से बुरी तरह चीखने लगा। रधिया भूखी-प्यासी शान्त-सी एकटक रामू की ओर देखती रही। उसके मुँह से शब्द तेज मशीन की तरह निकलने लगे "देवी, तोहें चुँदरी पन्हियौ।"

मृत्यु की छाया रामू के मुख पर पड़ने लगी। वह हँसा "काहे रधिया, देवी तोहे चुँदरी पन्हियौ"। एक एक शब्द अट्टहास के साथ गूँज उठा "हा-हा-हा—तोहे चुँदरी पन्हियौ हा-हा-हा—" रधिया डरकर चारपाई छोड़कर उठ खड़ी हुई। उसने अपने ओठों को कसकर बंद कर लिया।

× × × ×

रधिया ने देखा, उसी आँगन में जहाँ कुछ दिन पहिले एक नन्हा सा शव बाँधा जा रहा था वहीं आज एक बड़ा शव बाँधा जा रहा है। रधिया ने शव को पकड़ लिया "हमारी खातिर—बच्चन की खातिर—" इसके आगे कुछ भी न कह सकी। इस दूसरी नुकीली कील ने आकर उसके हृदय की दीवाल को एकदम चूर चूर कर दिया।

× × × ×

मकानवाला किराए के तकाजे करने लगा। उसका कुल चार रुपया होता था। रधिया ने सामान बेचकर उसके किसी तरह दो रुपए चुका दिए। एक रात्रि को गाँववालों तथा पड़ोसियों की नजर बचाकर वह अपने सप्त-वर्षीय पुत्र का हाथ पकड़कर आसुओं को पलकों से ढके, गाँव छोड़कर, चल दी।

उधर दूर--बहुत दूर—उसी स्थान पर सवारियों के पीछे पीछे रामू की प्रेत-छाया घूम रही थी और मूक भाषा में पुकार रही थी "बाबूजी, मजदूर चाहिए ?"

जीवन-पथ

मनोहरलाल अपने मित्र का पत्र पढ़ते ही खुशी के मारे उछल पड़े। दौड़े दौड़े वे गृहिणी के पास गए "सुनो तो।" गृहिणी चौके में बैठी ही बैठी बोली—क्या बात है ?

"एक खुशखबरी सुनाऊँ ?" खुशखबरी का नाम सुनते ही गृहिणी चौके से दौड़ी आई और खुशामद करने लगीं—"क्या खुशखबरी है ? जल्दी सुनाओ।" चपला भी दौड़ी आकर खड़ी हो गई और आग्रह-पूर्वक पूछने लगी—पिताजी, क्या खुशखबरी है ? जल्दी सुनाइए।

मनोहरलाल को इन खुशामदों और प्रार्थनाओं में आनंद आने लगा। "कुछ खिलाओ तो बताऊँ"। इसी वाद-विवाद में बड़ी देर हो गई। गृहिणी ने अंत में हारकर २ रसगुल्ले खाने को मनोहर बाबू के हाथ में दिए, तब वे हँसते-हँसते बोले—नवीन की यहाँ बदली हो गई है। उनकी चिट्ठी आई है—तीन-चार दिनों में सपरिवार आ जायँगे।

मनोहरलाल अपने मित्र के आने की खुशखबरी अपने दोस्तों को सुनाने चले गए। उधर मनोरमा अपनी सखी के आने की खुशी में हवा में उड़ी उड़ी फिरती थी। माता-

पिता दोनों ही खुशी में फूले नहीं समा रहे थे और उन्हीं लोगों के विषय में बातचीत भी कर रहे थे पर चपला को इन बातों में कुछ भी आनंद न आया।

माता बोली "चलो, चपला का भी मन लगा रहेगा।" गंभीर चपला चौंकी—क्यों माताजी, मन आपका लगेगा—पिताजी का लगेगा क्योंकि आपकी सहेली आ रही हैं और पिताजी के मित्र आ रहे हैं। मेरे लिये कौन आ रहा है जो मैं खुश होऊँ ?

मनोरमा बोली—अरे पगली, अब तो अजीत भी आ रहा है। चल, तुझे पढ़ाया करेगा। एम० ए० तो हो ही गया है। अब नौकरी भी मिल ही जायगी।

चपला बोली—वाह! जान न पहिचान, मैं सबसे थोड़े ही पढ़ा करूँगी। मैंने तो उसे देखा भी नहीं है।

मनोरमा बोली—बड़ा होनहार लड़का है। मुझे तो बड़ा चाहता है। पारसाल जब हम लोग उसके घर गए थे तब बेचारा बोर्डिंग में था नहीं तो सुनते ही दौड़ा आता। छुटपन में तुम दोनों साथ साथ खेला करते थे।

चपला ने कहा—मुझे तो कुछ याद नहीं।

मनोहरलाल ने मित्र के लिये अपने पड़ोसवाला मकान ठीक कर लिया। चपला शोर-गुल से घृणा करती थी—वह नहीं चाहती थी कि पिता के मित्र का घराना इतना निकट रहे। वह माता से जाकर बोली "इतना पास रहने

से लड़ाई होने की संभावना रहती है।" माता अपनी गंभीर पुत्री की इन बातों को सुनकर बोली "अरे वे तो अपने ही हैं—रिश्तेदारों से बढ़कर।" माता अपनी सत्रह वर्ष की पुत्री की गंभीरता और योग्यता से कभी कभी चिढ़ उठती थी। चपला साधारण सी साधारण बात की गहराई तक पहुँचती थी और जरा जरा सी बात के हजारों अर्थ निकालती थी पर वह गंभीर थी। वह आदि के पहिले अंत सोचती थी।

चपला को भी माता-पिता की खुशी में भाग लेना पड़ा। पिता आकर बोले "चलो सिनेमा दिखला लाएँ—अच्छा खेल है।" पहिले जब कभी गृहिणी सिनेमा जाने का नाम लेती तो टिकट के रुपयों के ऊपर घंटों झिकझिक होती। मनोहर बाबू टाँगे वगैरह का एक एक पैसा तक गिना लेते पर आज यह झगड़ा उठा ही नहीं। पहिले कभी चपला कोई भी खेल देखने का नाम लेती तो झट से मनोहरलाल बात समाप्त होने के पहिले ही उत्तर दे देते "वह खेल अच्छा नहीं है।" चपला और मनोरमा दोनों को आश्चर्य था। मनोरमा ताने से बोली "चलो आज वर्षों बाद संसार में कोई अच्छा खेल तो बना।" चपला बोली "ईश्वर करे, पिताजी के दोस्तों की बदली रोज हुआ करे।" मनोहरलाल हँसते ही रहे। और कोई समय होता तो लड़ने-झगड़ने लगते।

चपला ने जब खेल का नाम सुना तो वह बिना हँसे न रह सकी। यह वही खेल था जिसको आठ-नौ दिन

हुए, मनोहरलाल कह चुके थे कि यह तुम लोगों के देखने योग्य नहीं है।

इस खुशखबरी ने इस घर में प्रसन्नता का तूफ़ान खड़ा कर दिया। हर एक चीज प्रसन्नता की कसौटी में कसी जाकर नई और सुंदर लगने लगी।

× × × ×

"कौन है?" पूछकर चपला ने किवाड़ा खोला। देखा—एक मुस्कराता हुआ अपरिचित युवक। चपला झिझककर पीछे हटी। वह तो इसे जानती नहीं। झट से बोली "पिताजी नहीं हैं।" पर युवक हँसता हुआ बिना कुछ उत्तर दिए सीधे अंदर आ गया। चपला एक ओर हटकर खड़ी हो गई। मनोरमा दौड़ी आई "अरे अजीत?" उसने सस्नेह उसके सिर पर हाथ फेरा। पड़ोसवाले घर में सामान रक्खा गया। मनोरमा अपनी सखी कांता से दिल खोलकर मिली और मनोहरलाल नवीन बाबू से। मनोरमा अजीत से बोली—चपला को पहचाना कि नहीं?

अजीत हँसकर बोला "अब वह बड़ी हो गई है"। इतना कहकर उसने उसकी ओर दृष्टिपात किया—सुंदर किंतु शांत लड़की। चपला ने देखा—सुंदर गठीला शरीर और आकर्षक हँसमुख युवक। उसकी गंभीरता में मुस्कराहट फैल गई।

उनके दिन बड़े आनंद से बीतने लगे। अजीत को एक गंभीर, भावुक और विचारशील युवती मित्र मिली और चपला

को एक हँसमुख, प्रसन्नचित्त, बुद्धिमान् युवक मिला। दोनों एक दूसरे के संसर्ग में बहुत कुछ सीखने और सिखलाने लगे।

× ×. × ×

अजीत ने देखा—विचारशील चपला की बुद्धि बड़ी प्रखर है। इतिहास की एक एक घटना और उसके सन् उसे इस तरह याद रहते मानों यह सब उसके सामने की ही देखी हुई घटनाएँ हों। एक-दो बार ही इँग्लिश का पाठ पढ़ने से वह उसे अजीत को लेखक के ही शब्दों में दुहरा और फिर समझा सकती थी। उसकी लिखी हुई कविताएँ भाव-पूर्ण होती थीं यद्यपि वह भाषा की सुंदरता पर अधिक ध्यान नहीं देती थी। अजीत अनजाने ही में इस भावुक लड़की को चाहने लगा।

अजीत जब उसे पढ़ाने को जाता तब चपला हँसकर उठती हुई कहती—"Hullo ! my dear master !" अजीत देखता, इस भावुक लड़की का मजाक भी कितना उच्च और गंभीर होता है।

चपला हँसते हुए अजीत की ओर बड़े कौतूहल से देखती। पता नहीं, वह क्यों सोचती "ये सदा ही इतने खुश क्यों रहते हैं।" उसे इस हँसमुख युवक का चेहरा बड़ा ही सुन्दर लगता। वह देखती, अजीत अन्य युवकों की तरह हँसमुख होते हुए भी चंचल और उद्दंड नहीं है। वह

अजीत में देशभक्ति की मात्रा अधिक देखती। उन दिनों अजीत के एक उपन्यास "अभियोग" की धूम मची हुई थी। देशभक्तों के हृदय में इस उपन्यास ने एक क्रान्ति सी उत्पन्न कर दी थी। इस प्रतिभाशाली युवक की प्रतिभा ने चपला को मुग्ध कर दिया। वह ऐसे महान् युवक की घनिष्ठता में अपना गौरव समझने लगी! वह दिन प्रति दिन आकर्षण से अजीत की ओर खिंचने लगी।

× × × ×

किसी दिन अजीत को आने में देर हो जाती तो चपला आँगन में खड़ी होकर आवाज देती "अजीत—अजीत।" फिर आते ही पूछती "इतनी देर क्यों की?" अजीत हँसकर उत्तर देता "तुम तो मुझे फालतू समझती हो। जब चाहो तब दौड़ा आऊँ। मैं मर्द हूँ, मुझे तो दुनिया भर के काम हैं।" कहने को तो अजीत कह जाता पर वह यह भी जानता था कि चपला की पुकार सुनने पर वह किस तरह सारा काम छोड़कर दौड़ा आता है। चपला धीरे से कहती—यह तो मैं जानती हूँ।

इन दो प्रेममयी गृहस्थियों के बीच में स्वर्ग की सारी सुधा बरसती थी।

× × × ×

धीरे धीरे चपला के विवाह की बात चली। गंभीर चपला अनमनी सी रहने लगी। अजीत सदा ही हँसता

रहता, चपला के विवाह की बातों में उत्साह दिलाता पर चपला चिढ़ उठती। वह चाहती कि हँसमुख अजीत कभी गंभीर भी रहा करे—कभी चिन्ता भी किया करे। वह एक बार अजीत को दुःखित देखना चाहती थी पर जब वह सामने जाती तो देखती—हँसमुख चेहरा। वह रोती पर उसे अपने गिरते हुए अश्रुओं में एक हँसमुख चेहरे की परछाईं दीखती। वह चिढ़कर कहती—हँसी की भी सीमा होती है।

अजीत एक उपन्यास लिख रहा था। उस उपन्यास का नाम था "भूल"। चपला ने उसे पढ़ा पर वह क्रोधित हो गई। नायक और नायिका को लेकर वह अजीत से झगड़ उठी। वह बोली "अजीत, मैं तुम्हारे नायक शैलेन्द्र से घृणा करती हूँ—पाषाण, दगाबाज, विचारहीन शैलेन्द्र!" अजीत घबड़ाकर बोला "चपला, ऐसा न कहो। शैलेन्द्र को पहिचानने की कोशिश करो! उसकी परिस्थिति पर ध्यान दो!!" चपला गंभीर होकर बोली—उसने नायिका माधवी से शादी क्यों न की?

अजीत बोला—वह दुनिया से डरता था।

चपला बोली—कायर शैलेन्द्र अंधी दुनिया की परवाह करता था पर माधवी के हृदय की नहीं जिसने उसे इतना चाहा। अजीत, अगर वह दुनिया की इतनी परवाह करता था तो उसे यह पहले ही समझना चाहिए था।

अपराधियों की भाँति अजीत बोला—यह उसकी भूल थी। वह भूल को समझता था पर फिर भी वह उस भूल को सुधारना नहीं चाहता था—वह भूल भी उसे प्रिय थी।

गंभीरता का स्थान क्रोध ने ले लिया। चपला ने कलम निकालकर शैलेन्द्र के चरित्र की जगह लिखना शुरू किया—"पाषाण—कायर.. दगा...।"

अजीत ने झुककर उसके हाथों को कलम सहित पकड़ लिया—चपला, तुम भूलती हो। माधवी जितना शैलेन्द्र को चाहती थी उससे कहीं अधिक शैलेन्द्र उसे प्यार करता था। वह उस देवी से शादी करके उसे दुनिया की नजरों से गिराना नहीं चाहता था—वह नहीं चाहता था कि कोई उसकी माधवी के ऊपर उँगली भी उठावे।

"पर वह कठोर था अजीत..."

"चपला, कठोर कहाँ! उसका दिल तो कभी का टूट चुका था।"

चपला दुखी सी लौट आई। गंभीरता-पूर्वक वह इन बातों को सोचने लगी। पर उसे बार बार अजीत के शब्द याद आते—चपला, कठोर कहाँ! उसका दिल तो कभी का टूट चुका था।

यह घटना कितनी स्पष्ट, अजीत का जीवन-उपन्यास कितना उच्च और भाव-पूर्ण, रहस्यमय था। दोनों ही अनमने से हो गए। अजीत पहिले की तरह हँसता रहता पर उसके कानों में चपला का धीमा स्वर गूँजता "पाषाण

शैलेन्द्र, अंधी दुनिया की परवाह करता था पर माधवी की नहीं, जिसने उसे इतना चाहा।"

एक दिन चपला कांता से बातें कर रही थी पर इसी बीच में उसे झपकी आ गई और वह उनके घर में ही पलँग पर सो गई। इसी बीच में अजीत भी आ गया और धीरे से कुर्सी पर बैठकर पढ़ने लगा।

उधर चपला स्वप्न देख रही थी—उसकी और अजीत की शादी हो रही है—खूब धूम-धाम से। दोनों वर-वधू के भेस में खड़े हैं। इसी बीच में सारे मंडप ने एक बड़े भयंकर जानवर का रूप धारण किया और बड़ा सा मुँह खोलकर उन दोनों को निगलने चला। डरकर चपला चिल्ला पड़ी, "अजीत--अजीत देखो।"

कुर्सी छोड़कर अजीत उठ खड़ा हुआ और उसने चपला को हिलाया। चपला ने धीरे धीरे अपना सारा स्वप्न सुना दिया। अजीत विकृत स्वर से बोला—दुनिया इतनी ही भयंकर है—वह जानवर नहीं दुनिया ही है जो मेरी और तुम्हारी शादी में दोनों को निगल जायगी।

इस घटना ने चपला को भयभीत कर दिया--वह कमजोर-सी लगने लगी।

× × × ×

चपला छत पर खड़ी आकाश की ओर एकटक देख रही थी। उस अनंत आकाश के कोने से उसे हँसता हुआ

एक युवक उसकी ओर आता दिखलाई दिया। उसने आँखें बंद कर लीं। पर वह चौंकी। उसे अपनी पीठ पर पतली पतली हलकी उँगलियों का धीमा स्पर्श सा प्रतीत हुआ "चपला"। चपला ने घूमकर देखा—अजीत खड़ा है।

"आज तुम कुछ उदास-सी हो।"

"नहीं अजीत—कहीं तो नहीं।"

स्वस्थ होकर अजीत कहने लगा "आज के तीसरे रोज तुम्हारी शादी है।" हः हः हः, अजीत हँसा। चपला ने आँखें उठाकर अजीत की ओर देखा—उसे यह हँसी बहुत बुरी लगी। वह धीरे से व्यथित होकर बोली—सुनती तो ऐसा ही हूँ।

अजीत उसके निकट खिसक आया। फिर कुछ सोचकर उसने बुलाया "चपला।"

चपला चौंकी। उसने देखा, अजीत के चेहरे की मुस्कराहट बदल गई थी। वह बोला—चपला, अपने इस मित्र को याद रखना—अजीत ने तुम्हें चाहा है, केवल जिंदगी में तुम्हें ही—उतना जितना तुम्हें संसार में 'कोई' भी न चाहेगा।

चपला घूमी। आज प्रथम बार उसने अजीत के मुँह से इन शब्दों को सुना। उसे प्रसन्नता हुई। आज उसने हँसमुख अजीत को पहिचाना एक भावुक के रूप में। आज उसने इस हँसी के भीतर से वेदनाओं को झाँकते हुए देखा। वह रोकर बोली—अजीत, तुम अंधी दुनिया की परवाह करते हो?

अजीत बोला—चपला, मैं सबसे ज्यादा तुम्हारी परवाह करता हूँ फिर दुनिया की। पर मैं इस दुनिया से घृणा करता हूँ। वह हमें-तुम्हें दोनों ही को नहीं समझती है।

"अजीत, अपनी ओर देखो।"

"चपला, मैं तो तुम्हारी ओर देखता हूँ—तुम केवल सुखी रहो—" अंतिम बात समाप्त होते ही अजीत हँसा। फिर वही हँसी—"पर मेरे नायक शैलेन्द्र को पाषाण न कहना, चपला!"

चपला ने उसी के शब्दों को दुहराया—उसका हृदय तो टूट चुका है—अजीत।

"ठीक कहा।" कहकर वह लौट गया।

× × × ×

चपला ने अजीत के कमरे की ओर कदम बढ़ाया। दरवाजा भिड़काया हुआ था। उसने धीरे से किवाड़ जरा सा खोलकर देखा—अजीत कपड़े पहिनता हुआ गा रहा है। चपला बाहर खड़ी होकर सुनने लगी।

पागल गति तेरी कैसे कही जाय।
प्रेमी-दिल जी भरकर रोता,
रोते रोते है जब थक जाता,
फिर आँसू उपहार में दे जाता,
पागल गति तेरी कैसे कही जाय।

धीरे धीरे वह आती,
निष्ठुर कह उसे चिढ़ाती,
हृत्तन्त्री उसकी बज जाती,
पागल गति तेरी कैसे कही जाय।

चपला कमरे में घुसी और अजीत के पीछे जाकर खड़ी हो गई। अजीत आगे बढ़कर हँसकर बोला—आओ चपला, कुछ घंटों की मेहमान।

चपला बोली—कहाँ की तैयारी हो रही है?

"वाह वाह—खूब पूछा—तुम्हारी बारात आ रही है। स्वागत तो मैं ही करूँगा—" कहकर वह हँसा। पर चपला व्यथित होकर बोली "अजीत, इस तुम्हारी हँसी से तो रोना भला है। अजीत, मैं चाहती हूँ तुम हँसो नहीं, रोओ—ऐसे—इस तरह कब तक हँसोगे—तुम्हारा दिल रो रहा है पर यह बनावटी हँसी अजीत! मैं इस हँसी से घृणा करती हूँ—एक बार तुम रोओ, दिल भरकर रो लो—"

"चपला, अपने अजीत को इतना कमजोर न बनाओ।"

"अजीत, मुझे क्षमा करो। ईश्वर तुम्हें शक्ति दे—दुनिया तुम्हारी पूजा करे।"

"चपला, मैं तुम्हारी इज्जत करता हूँ।"

"और मैं तुम्हारी पूजा करती हूँ अजीत"—विकृत-स्वर से चपला कहती गई—"सिर्फ तुम्हारी ही, अजीत"।

इतने ही में किसी ने आवाज दी "चपला—चपला।" चपला ने जोर से कहा "आती हूँ।" फिर दोनों आमने-सामने खड़े थे पर भाषा मौन थी। उस समय अजीत हँस नहीं रहा था—वह गंभीर था।

अजीत उठा, उसने अपना हैट उठाया और आईने के सामने जाकर सिर पर रक्खा। आईने में चपला और अजीत एक दूसरे के निकट दीख पड़े। चपला बोली "अजीत, आज तुम बड़े सुंदर लग रहे हो।" अजीत अनमना-सा शून्य दृष्टि से चपला की ओर देखता रहा। चपला धम् से कुर्सी पर बैठ गई। अजीत बोला "जाओ, तुम्हें देरी हो रही है।" पर चपला निर्जीव सी बैठी रही। अजीत ने खिड़कियाँ वगैरह बंद कीं और धीरे से चपला का हाथ पकड़कर उठाया "चपला, उठो।" वह उसका हाथ पकड़े ही पकड़े मनोरमा वगैरह के पास ले गया और फिर मनोरमा से बोला "देखिए, चपला मुझसे शिकायत करने आई है कि माताजी ने बड़ी बहिन की शादी में ज्यादा दिया था और मेरी में सामान कम दे रही हैं।" मनोरमा और अन्य स्त्रियाँ हँसने लगीं।

नीची दृष्टि करके चपला ने ओंठों के भीतर ही धीरे से कहा "हूँ, जो चाहती थी वह न दिया।" अजीत ने मुँह मोड़कर रूमाल से आँसू पोंछ लिए।

चपला ने बिदाई के समय देखा सब रो रहे हैं—उसकी आँखें किसी को ढूँढ़ रही थीं। उसने देखा, कुर्सी का सहारा

लिए अनमना सा, गुलाब-पाश लिए, खड़ा है अजीत—पर वह हँस नहीं रहा था। चपला को धक्का लगा। वह इस सुन्दर चेहरे पर अंतिम बार वही चिर-परिचित हँसी देखना चाहती थी। पहिले वह उसे गंभीर देखना चाहती थी और हँसते देखकर कहती थी "छिः, हँसी की भी सीमा होती है।" पर आज उसे गंभीर देखकर उसकी इच्छा हुई--वह हँसे, पुनः मुस्कराए।

चपला अजीत को गंभीर देखना चाहती थी पर ओफ इतना गंभीर नहीं।

× × × ×

चपला को देखकर ससुरालवाले बड़े खुश हुए। सुधाकर तो अपने भाग्य को सराहने लगा। चपला खुद भी खुश रहती, मजाक करती, हँसती पर कभी कभी हँसते समय वह चौंककर चुप-सी हो जाती और उसका चेहरा फक हो जाता। सुधाकर ने इसे देखा पर कुछ ध्यान न दिया। उसने सुधाकर को प्रसन्न करने में कुछ भी कसर न उठा रक्खी। चपला देखती—सुधाकर उसे कितना प्यार करता है तब वह भी उसे क्यों न चाहे ? यह तो उसे धोका देना है। हर एक लड़की सुधाकर जैसा सम्पन्न पति पाकर अपने को धन्य समझती—इसमें कोई सन्देह नहीं।

कुछ दिनों बाद चपला ने देखा कि वह अपनी जिन्दगी में दूसरी बार सुधाकर को प्यार करने में सफल हो सकी

है किन्तु अजीत को एक क्षण के लिये भी भूलना उसकी शक्ति से बाहर था। जब सुधाकर हँसता तो उसे हँसमुख अजीत याद आता। सुधाकर को हँसते देखकर चपला अपना हँसना भूलकर उसकी ओर बड़े ध्यान से देखती। सुधाकर पूछता—"क्या हुआ चपला, इतने गौर से क्या देखती हो?" चपला कहती—तुम हँसते हुए बड़े सुंदर लगते हो।

चपला कुछ दिनों रहकर अपने मायके लौट आई। किंतु उसे शांति कहीं भी न मिली। अजीत उससे मिलता रहता, इधर-उधर की बातचीत भी होती पर दोनों ही अनमने से रहते, निकट रहने पर भी बहुत दूर रहते। उन दोनों के बीच में एक ऊँची दीवार खड़ी थी।

चपला कहती—अजीत, मुझे क्षमा करो। मेरे मित्र अजीत, मैं तुम्हें गंभीर देखना चाहती थी पर इतना नहीं। प्रिय मित्र, हँसो—एक बार वही चिर-परिचित हँसी—यह गंभीरता मैं नहीं सह सकती।

"तुम्हीं ने तो एक दिन कहा था चपला। छिः, हँसी की भी एक सीमा होती है"—कहकर अजीत खूब जोर जोर से हँसने का ढोंग करता।

काम-काज की भीड़ से अजीत कुछ दुबला सा हो रहा था। चपला सस्नेह पूछती—"अजीत, तुम दुबले क्यों हो रहे हो?" अजीत हँसकर कहता—कहीं उपन्यासकार भी मोटे हुआ करते हैं!

चपला बोली—अगर अब कभी मैंने तुम्हें रात तक लिखने का काम करते देखा तो आकर बत्ती बुझा दिया करूँगी समझे !

अजीत बोला—चपला नहीं, तुम्हारी तो मैं कोई भी बात नहीं समझता हूँ ।

चपला भी उसकी बातों से कभी कभी हँस पड़ती ।

एक दिन चपला शाम को खाना खाते ही कांता के घर चली गई । बातचीत के सिलसिले में देर हो गई इसलिये कांता ने उसका बिस्तरा अपनी ही तरफ बिछवा लिया । चपला को बड़ी देर तक नींद नहीं आई । कांता ने अजीत को आवाज दी पर वह कमरे में ही बैठा बैठा बोला "जिसे जरूरत हो वही यहाँ आ जाए ।" चपला उठकर कमरे की ओर बढ़ी । अजीत मेज पर सिर झुकाए बैठा-बैठा लिख रहा था । चपला झुककर बोली "अजीत, यह उपन्यास मुझे समर्पण करना ।" अजीत घूमा "आओ चपला—यह तुम्हें ही समर्पित करूँगा ।" फिर सहसा रुककर बोला—अच्छा चपला, क्या मेरे उस "भूल" उपन्यास के नायक शैलेंद्र को तुम अब भी निष्ठुर कहती हो ? नहीं—वह निष्ठुर नहीं है । मैं फिर भी कहता हूँ...

चपला व्यथित सी होकर बोली—"उसका दिल तो टूट चुका है अजीत ! मैं शैलेंद्र की पूजा करती हूँ ।" अजीत ने जोड़ा—और चपला, सच कहता हूँ मैं माधवी की इज्जत करता हूँ—मेरी आराध्य देवी !

चपला ने बत्ती बुझा दी—"अजीत, इतनी रात तक लिखना ठीक नहीं।"

अजीत और चपला साथ-साथ अपने-अपने बिस्तरों की ओर बढ़े।

× × × ×

कई महीनों बाद चपला और सुधाकर को अजीत का एक पत्र मिला जिसमें उसने लिखा था कि वह इलाहाबाद की कांग्रेस का नेता चुना गया है। उन दिनों कांग्रेस बहुत जोर पर थी। एक युवक के लिये कांग्रेस का नेता होना साधारण सी बात न थी। दोनों उस दिन बड़ी देर तक अजीत के विषय में बातचीत करते रहे। सुधाकर ने आज प्रथम बार चपला को इतना उत्साहित और प्रसन्न देखा। जो चपला कभी अपनी तारीफ सुनकर भी खुश नहीं होती थी वही अजीत की तारीफ सुनकर खिली पड़ रही थी। सुधाकर ने देखा—गंभीर चपला कुछ बोल भी ज्यादा रही है। उसने सोचा, दोनों साथ साथ रहते आए हैं आत्मीयता हो ही जाती है। सुधाकर भी इस हँसमुख उत्साही युवक को चाहने लगा था। उपन्यासकार अजीत को देशभक्त के रूप में देखकर चपला गौरव से भर गई।

सूर्य की प्रखर किरणों के समान अजीत का तेज और उत्साह प्रकट हुआ। इस युवक नेता की जय-जयकार से देश का कोना-कोना गूँज उठा। चपला बड़े उत्साह से

अजीत के लेक्चर पढ़ती और चुपके-चुपके एकांत में अपने प्रिय मित्र की स्मृति में कुछ अश्रु-पुष्प चढ़ाती।

एक दिन सुधाकर घूमने निकला पर उसी समय लौट भी आया। वह कुछ उदास सा था। चपला ने पूछा "क्या हुआ? सच बताओ।" सुधाकर चपला के रक्तहीन से चेहरे की ओर देखता रहा। "क्या कुछ मेरे मायके की खबर है?" सुधाकर फिर भी चुप था। चपला घबड़ाकर बोली "क्या अजीत—उन्हें कुछ हुआ है?" तब सुधाकर बोला—"हाँ चपला, वह देशभक्त भूखा शेर पिंजड़े में बंद कर दिया गया है।" चपला थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ी रही। फिर घुटने टेक दिए और अस्पष्ट भाषा में प्रार्थना करने लगी "अजीत! ईश्वर तुम्हें सफलता दे, तुम्हारा मार्ग फूलों से सजे।" सुधाकर ने देखा, उसकी आँखों में बड़े-बड़े आँसू थे।

चपला रोज हिसाब लगाती—अजीत को छूटने में आज से कितने दिन हैं—अंतिम दिन वह हिसाब लगाने बैठी। सुधाकर बोला "पगली, कल ही तो छूटेगा।" चपला उस दिन कितनी खुश हुई—सुधाकर मुग्ध सा उसे देखता रहा।

चपला और सुधाकर उसी दिन, रात की गाड़ी से, इलाहाबाद पहुँचे।

जेल के फाटक पर इस युवक नेता के स्वागत के लिये बड़ी भीड़ थी। चपला और सुधाकर भी अन्य लोगों के साथ आगे की तरफ हाथों में फूलों के गजरे लिए खड़े थे।

चपला ने गजरा अजीत को पहनाया—एक देशभक्त की हैसियत से। अजीत ने गजरा उतारकर हाथ में ले लिया और फिर सब घर लौटे। वह गजरा अजीत ने अपने कमरे में एक खूँटी पर टाँग दिया। चपला का हृदय इस देश-प्रेमी के चरणों पर श्रद्धा से लोटने लगा। वह सोचने लगी—कहाँ इतना महान् अजीत और कहाँ तुच्छ वह।

चपला को कल ही लौट जाना था। रात को वह अजीत के कमरे में गई। अजीत कुछ लिख रहा था। पीछे से जाकर उसने अजीत के कंधों पर हाथ रक्खा और गर्वित सी होकर बोली—देश-भक्त, ईश्वर तुम्हारे पथ में पुष्पों की वृष्टि करे!

"चपला, यह तुम्हारा ही आशीर्वाद है—तुम्हारी ही पूजा का फल है।" अजीत पुनः बोला—चपला, तुम सुखी रहो—अजीत को भूल—

चपला को एक ठेस लगी—अजीत, यह तुम्हारा आशीर्वाद नहीं अभिशाप है। मनुष्य चिड़िया-तोते पालते हैं और उनसे भी उनकी प्रीति हो जाती है कि वे उनके जाने पर वर्षों बाद भी उनकी याद में रो पड़ते हैं तब तुम—तुम तो एक सजीव आदमी हो—हृदय के इतने निकट अजीत।

अजीत ने बात बदली—"चपला, आज शाम को मेरा लेक्चर है। तुम सुनने चलोगी न?" हतोत्साह सी चपला बोली—जैसी तुम्हारी मर्जी अजीत।

× × × ×

सुधाकर दूसरे दिन ही चपला को ले गया। चपला कितनी ही प्रसन्न रहती—सदा हँसती पर उसके चेहरे पर दु:ख की छाप अमिट थी। जब वह हँसती—उसका दिल रोता। सुधाकर जिस समय उससे मीठी मीठी बातें करता उस समय उसका जी चाहता कि वह खूब जोर जोर से रोये। इसी प्रकार कितने ही दिन, कितने ही महीने और कई वर्ष बीत गए।

एक दिन चपला नहाकर उठी—उसके केश गीले थे। छत पर खड़ी होकर वह उन्हें सुखाने लगी। सुधाकर भी काम पर गया हुआ था। सहसा उसने सुना, अखबार-वाला चिल्ला रहा है—'प्रसिद्ध नेता अजीत'—चपला का ध्यान उस ओर खिंचा। अखबारवाला पुन: चिल्लाया—'प्रसिद्ध नेता अजीत बुरी तरह घायल—सभा पर लाठी-चार्ज।' चपला छत से नीचे उतरी। उसकी आँखें बड़ी भयानक-सी दिखाई दे रही थीं। सीढ़ी चढ़ते हुए सुधाकर ने उसे पकड़ लिया। वह बोली "सुधाकर—अजीत घायल हो गया।" सुधाकर स्वयं भी इस युवक नेता के लिये रो रहा था। वह उसे क्या कहकर समझाए!

चपला उसी तरह किवाड़ खोलकर नीचे उतरी। सुधाकर ने जल्दी से कुछ रुपये जेब में डाले और साथ हो लिया। शांत, स्थिर चपला सुधाकर के साथ इलाहाबाद

पहुँची। वह सीधे अजीत के कमरे में घुसी। वह बिस्तरे पर पट्टियों से बँधा हुआ पड़ा था। वह अपने को रोकने में असमर्थ हो गई—इतने दिन का प्रेम-बाँध टूट पड़ा। वह उससे लिपट गई—अजीत, मेरे अजीत--वह व्याकुल हो उठी। अजीत दर्द से कराहा "ओफ, चपला—" उसने चपला का हाथ अपने कमजोर गर्म हाथों में ले लिया। फिर बोला "चपला, मेरे 'भूल' उपन्यास का नायक शैलेंद्र कठोर नहीं है।" चपला की आँखों में कुछ भयानकता थी। वह बोली—नहीं नहीं, मेरे अजीत उसका हृदय तो टूट चुका था।

अजीत की पट्टियों में ख़ून लगा देखकर चपला रोने लगी—"अजीत, यह क्या? मुझे तुम्हें देश-भक्त नेता बनते देखकर गौरव हुआ था पर नहीं जानती थी कि इस गौरव ही में मेरा सर्वनाश छिपा था। अजीत, पहले मैं तुम्हें गंभीर देखना चाहती थी पर अजीत, इतना गंभीर नहीं..." अजीत ने चपला का हाथ अपने उन्नत ललाट पर रख दिया। मनोरमा, कान्ता, मुरलीधर, सभी की आँखों में आँसू थे पर किवाड़े से लगा खड़ा सुधाकर गंभीर बना कुछ सोच रहा था।

सच्चा शहीद स्वतंत्रता की बलि-वेदी पर बलिदान हो गया। पर वह लहर—वह ज्वाला कभी भी न बुझी। भारत-माता ने अपने घायल लाल को अपने अंक में ले लिया।

× × × ×

सुधाकर उन्मादिनी सी चपला को अपने घर ले आया। चपला का गुलाबी चमकता हुआ चेहरा रक्तहीन सफेदी से पुत गया था। सुधाकर कभी कभी उसकी आँखों के भावों को देखकर कुछ डर सा जाता था।

एक संध्या को चपला सुधाकर के निकट जा बैठी और बोली "सुधाकर, एक कहानी सुनोगे ?" सुधाकर अश्रुओं को पीकर बोला "चपला, सुनाओ।" चपला कुर्सी के डंडे पर सुधाकर के कंधों का सहारा लेकर बैठ गई और फिर टूटी-फूटी उलझी हुई भाषा में उसने कहना शुरू किया।—

"सुधाकर, एक लड़की थी जिसने जीवन-पथ के प्रारंभ में एक उत्साही, देशभक्त, उपन्यासकार युवक को प्यार किया और वह भी उसे प्यार करता था पर उनका प्रेम निःस्वार्थ और पवित्र था। वह लंबी लंबी बातें नहीं बनाता था। वह हँसता ही रहता था पर अब समझती हूँ, शायद दिल में रोता था।

"सुधाकर, वह लड़की उसकी हँसी से चिढ़ती थी। वह उससे बराबर कहती—'छिः हँसी की भी सीमा होती है।' सुधाकर, सचमुच वह एक दिन गंभीर हो गया—उतना गंभीर जितना कि वह लड़की नहीं चाहती थी"—कहकर चपला मुँह ढाँपकर रोने लगी। फिर कुछ देर बाद रोकर पुनः कहने लगी—"जिस दिन उस लड़की की शादी थी उसी दिन—

प्रथम बार उस युवक ने उससे कहा—'मैंने तुम्हें उतना चाहा है जितना तुम्हें कोई भी न चाहेगा', पर वह विचारहीन लड़की उसे निष्ठुर कहती—पाषाण कहती। वह बेचारा कहता 'सब सहूँगा पर तुम्हारी बेइज्जती नहीं। सुधाकर, उस युवक का दिल टूट चुका था। वह शहीद था—वीर नेता था। मैं भूल गई—पर वह अंधी दुनिया की परवाह करता था—उससे घृणा करता था।

"वह—वह भारत-माता के बंधनों को काटने में स्वयं कट गया—मिट गया। स्वतंत्रता का प्रेमी वह युवक माँ की गोद में विजयी वीरों की तरह अंत में सो गया। सुधाकर, उस लड़की का दिल भी टूट चुका था। उसने अपने जीवन में दो को प्यार किया—पर वह तो उस देवात्मा अजीत की पूजा करती थी और सुधाकर, तुम्हें प्यार करती थी। अजीत मेरा था उपास्य-देव। मैं उसकी पूजा करती थी और करती रहूँगी; क्योंकि मैंने उसे प्यार किया था। सुधाकर, मुझे तुम क्षमा कर सकोगे? बोलो, कर सकोगे?" वह सिसकने लगी।

दुखी सुधाकर बोला—कितनी दर्द-भरी कहानी है—पर चपला, सुधाकर भी तुम्हें उतना ही चाहता है जितना तुम अजीत को चाहती थीं। उसका प्रेम भी वैसा ही निःस्वार्थ है।

"सुधाकर, मैं प्रेमी अजीत को प्यार करती हूँ। उपन्यासकार अजीत के लिये आँसू गिराती हूँ और देशभक्त अजीत की पूजा करती हूँ।"

सुधाकर बोला—देवात्मा अजीत धन्य।

सड़क पर से एक लंबा जोशीला जुलूस निकल रहा था। लोग जय-जयकार कर रहे थे।

"देश-भक्त शहीद अजीत"।

"जिंदाबाद।"

चपला और सुधाकर भी चिल्ला पड़े "हमारे प्रिय नेता अजीत।"

"जिंदाबाद।"

इतिहास का प्रोफेसर

"प्रत्येक मनुष्य अपने साथ एक इतिहास लिए होता है—बड़ा ही करुण, बड़ा ही दर्द-भरा इतिहास! जीवन की एक एक घटना अपने अपने समय का इतिहास है। जो मरने पर उसी के साथ चला जाता है, लुका-छिपा और भूला-सा"—क्लास शांत हो जाता। लड़के आश्चर्य और उत्सुकता से पढ़ाते हुए अपने इतिहास के प्रोफेसर की ओर देखते। थोड़ी देर बाद प्रोफेसर चौंककर रुकता—"हाँ, तो मैं कह रहा था कि स्काटलैंड की रानी मेरी ने मरते समय कहा था कि मेरा कफन उठाकर देखना, मेरी छाती पर 'फिलिप और कैले' दो शब्द लिखे मिलेंगे।"

× × × ×

एक सुंदर सजे हुए कमरे में पुस्तकों से सुसज्जित मेज के सामने पढ़ता हुआ वह फैशनेबुल युवक थोड़ी देर के लिये अटका और हिस्ट्री की पुस्तक को उसने थोड़ी देर के लिये बंद कर दिया—उसे हिस्ट्री से विशेष प्रेम था। उसने इतिहास के विषय में कितनी ही छान-बीन की थी।

उसे कालेज के प्रोफेसर वगैरह कहा करते थे कि यह एक दिन बड़ा भारी इतिहासकार होगा। सहसा उसकी

दृष्टि सामने की दीवार पर टँगी एक तस्वीर पर अटक गई। वह तस्वीर हँस रही थी एक सरल मीठी हँसी, और शायद देख रही थी हिस्ट्री में तल्लीन उसकी ओर। उस तस्वीर की ओर दृष्टिपात करते ही वह प्रसन्न होकर अपने भावी जीवन और भावी संगिनी की कल्पना करने लगा। कोने के नीचे लिखा था "छाया।" धीरे धीरे उसने प्रसन्नता-पूर्वक दुहराया "छाया"।

× × × ×

एक कमरे में पुस्तकों के ढेर के आगे बैठो बैठो वह ऊब उठी। उसने उस पुस्तक को बंद करके जोर से मेज पर पटक दिया "कितना नीरस और व्यर्थ का विषय है।" उसे हिस्ट्री से बड़ी नफरत थी। उससे प्रोफेसर वगैरह कहा करते थे—छाया, तुमने हिस्ट्री व्यर्थ ली, जब कि उसमें तुम्हारा मन नहीं लगता।

क्रोध में इतिहास जैसे विषय को पचासों गालियाँ देती हुई छाया कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी हुई। उसने सामने की ओर देखा, एक सुंदर फोटो उसे जबरदस्ती अपनी ओर आकृष्ट कर रही है। उसे ऐसा लगा वह किसी चिंता में लीन कुछ कुछ मुस्कराहट लिए उसकी ओर देख रहा है। फोटो के नीचे लिखा था "निरंजन।" उसने नीची दृष्टि करके लज्जा से दुहराया "निरंजन"।

× × × ×

एम० ए० पास करके निरंजन हिस्ट्री का प्रोफेसर हो गया और उसी साल छाया के साथ धूम-धाम से उसकी शादी भी हो गई।

छाया पढ़ी-लिखी, सुंदर तथा सुशील थी। निरंजन ने अपने हृदय का संचित समस्त प्रेम उँडेलकर उसका स्वागत किया। विवाह के पश्चात् निरंजन अपनी नौकरी पर चला गया और कुछ दिनों पश्चात् छाया को भी लेता गया।

× × × ×

"अच्छा, यह तो बताओ इतिहास पढ़ने से क्या फायदा?" छाया चिढ़कर पूछती। "छाया, इससे बड़े बड़े फायदे हैं, तुम्हें क्या क्या बताऊँ? अच्छा तो सुनो इतिहास से हमें ..।" "नहीं—नहीं, मुझे कुछ नहीं सुनना है। मुझे मरे हुए मुर्दों के नाम मत सुनाओ। जो मर गए वह मर गए। अब उनके नामों को रटने से क्या फायदा? वे मरे हुए फिर से राज्य करने तो आयेंगे नहीं इसलिये उनका शासन अच्छा हो या बुरा इससे हमें क्या फायदा—" "छाया, तुम तो पगली हो।" "नहीं—नहीं, पहले मेरी सुनो। सभी कहते हैं 'बीती ताहि बिसारि दे अब आगे की सुधि ले' पर—पर मैं तो देखती हूँ—तुम—मैं देखती हूँ—मुझे यह कहना पड़ेगा 'बीती सारी रट ले आगे की बिसारि दे'।"

छाया और निरंजन दोनों ही जोर जोर से हँसते। चंचल छाया आगे बढ़कर उसकी पुस्तक बंद करके कहती

"क्यों, इतने गौर से क्या पढ़ रहे हो ? क्या कोई बाद-शाह अपना राज्य तुम्हारे नाम लिख गया है ?" निरंजन हँसकर कहता "हाँ, और रानी तुम्हें बना गया है।" बड़ी देर तक बहस होती। वह प्रसिद्ध इतिहासकार एक स्त्री से न जीत सकता। अंत में गर्विता छाया कहती "तो मान गए इतिहास एक व्यर्थ की चीज है। उसे स्कूलों और कालेजों से हटा देना चाहिए।" निरंजन कहता "बिल्कुल ठीक है। तुम मेरे ही जैसे इतिहास-प्रेमी की पत्नी होने योग्य हो।"

× × × ×

एक दिन कालेज से लौटने पर शाम को ही निरंजन सो गया और नींद में बड़बड़ाने लगा "सन् १६०५ ई० में सम्राट् अकबर की मृत्यु हो गई।" पास ही में बैठी छाया ने उत्तर दिया—और तुम उसे कंधा देने गए थे।

"अकबर ने पानीपत की दूसरी लड़ाई जीती।"

"और तुम्हें प्रधान सेनापति बना दिया।"

"बिहारीमल ने अपनी पुत्री योधाबाई अकबर को ब्याही।"

"तुम्हीं तो उस विवाह के पुरोहित थे।"

"तत्कालीन सम्राटों में से कोई भी अकबर महान् की बराबरी नहीं कर सकता है।"

"तुम्हें उसने घूस दिया था।" इतना कहती कहती छाया निरंजन को हिलाकर पूछती "क्यों, क्या अकबर की बहुत

याद आ रही है?" निरंजन हड़बड़ाकर उठ बैठा। छाया की हँसी से सारा कमरा गूँज रहा था—"क्यों, यह तो बताओ, अकबर की शादी कब हुई थी और किससे हुई थी?" इत्यादि प्रश्नों से छाया ने उसे तंग कर दिया। अंत में निरंजन ने कहा "छाया! तुम हिस्ट्री में बड़ी योग्य हो। कल तुम्हीं मेरी जगह कालेज में लेक्चर दे आना।" छाया बोली "हाँ, अवश्य ऐसी हिस्ट्री पढ़ाकर आऊँगी कि तुम्हें कोई पूछेगा भी नहीं।"

× × × ×

छाया सिनेमा की शौकीन थी। जब वह सिनेमा जाती तब निरंजन उसे टोकता "छाया, क्या करोगी देख के? जो चीज व्यर्थ की है, जिसमें कुछ भी सचाई नहीं, केवल आँखें ही खराब होती हैं वह चीज तो घृणा के योग्य है।" बिगड़कर छाया कहती—देखूँगी क्या? कला देखूँगी, फोटोग्राफी देखूँगी और एक सुंदर कहानी मालूम होगी। नहीं तो क्या तुम्हारी तरह यह थोड़ी ही याद करूँगी कि वह कब मरा, कब जीया, कब उसकी शादी हुई, कब बीबी मरी?

उस दिन दोनों "देवदास" खेल देखकर घर लौटे। निरंजन को बदला लेने का मौका मिला। "हाँ तो छाया, तुम्हारा देवदास कह रहा था—कैसे कह रहा था"—निरंजन देवदास की ही तरह लड़खड़ाकर चलने का अभिनय करता और जोर से दुःखी मुँह बनाकर कहने की कोशिश करता।

"दुखवा कासे कहूँ ।" फिर सँभलकर पूछता "छाया, तुम्हीं ने उसका दु:ख क्यों नहीं सुन लिया ?" छाया हँसकर कहती—हाँ--हाँ, मैं तो सुन ही लूँगी क्योंकि वह मेरा है । जाओ, जाओ तुम्हें तुम्हारी 'मेरी', 'जेनी' वगैरह याद कर रही हैं ।

इसी प्रकार हँसी-मजाक में उनके सुनहरे दिन बीत रहे थे ।

× × × ×

संसार-चक्र बड़ा विचित्र है । कौन जानता था कि जो जिस चीज से नफरत करेगा वह उसी के चक्कर में आ फँसेगा ।

"छाया—छाया—छाया ।" निरंजन ने आवाज दी । जल्दी-जल्दी दौड़कर छाया ने किवाड़ खोले । रात के एक बजे लड़खड़ाए हुए निरंजन ने प्रवेश किया । वह अपने बिस्तरे पर जाकर सो गया । उधर छाया भी अपनी खाट पर लुढ़क पड़ी ।

निरंजन का स्वास्थ्य गिरने लगा । कार्य उसी प्रकार चल रहा था । सबेरे कालेज जाता, दिन भर छाया से हँसी-खुशी से बोलता । सब कार्य पहले की तरह था पर शाम होते ही दोस्तों की मंडली में पहुँचता । दिन भर ठीक रहता पर रात को उग्र रूप धारण करता । अब वह रात के दो-दो बजे आने लगा--बुरी संगति का असर बुरा ही होता है ।

छाया चिन्तित-सी रहने लगी। उसके रंग में पीलापन आ गया और शरीर कमजोर पड़ने लगा। निरंजन पूछता "छाया, तुम्हें क्या हो गया है ?" छाया हँसकर टालती "नहीं, कुछ तो नहीं हुआ।" वह छाया को तरह-तरह के टानिक लाकर देता। छाया ही निरंजन की सब कुछ थी। दुनिया की कोई भी बात निरंजन और छाया के प्रेम में फर्क नहीं डाल सकती थी। उसी प्रकार हिस्ट्री पर पहले की ही तरह विवाद होता पर छाया रूखी सी रहती। निरंजन को पश्चात्ताप होता। वह प्रतिज्ञा करता कि अब वह ऐसा काम कभी न करेगा जिससे छाया को दुःख हो। पर शाम होते ही मित्रों की आवाजें आने लगतीं और वह चल देता।

छाया निरंजन से कभी कुछ न कहती थी। उसमें अब गंभीरता आ गई थी। छाया ने एक दिन अत्यन्त गंभीर होकर निरंजन से कहा "इन मित्रों की मंडली को छोड़ दो। ये सब अभिनेता हैं। ये दूसरों को बिगाड़ना जानते हैं। दूसरों के सुख-दुःख की इन्हें क्या परवाह! ये तुम्हें पतन की ओर ले जा रहे हैं। बोलो, क्या कहते हो ?" निरंजन को अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हुआ। वह छाया को बहुत अधिक चाहता था। वह छाया की बात टालने की अपेक्षा मृत्यु को श्रेयस्कर समझता था। उसने प्रतिज्ञा के स्वर में कहा "छाया, ऐसा ही होगा। मुझे तुम्हारे सिवा संसार में

किसी चीज की आवश्यकता नहीं है।" छाया के चेहरे पर गर्व की मुस्कराहट फैल जाती, निरंजन का हृदय हल्का हो जाता।

शाम होते होते प्रतिज्ञाओं के बंधन ढीले पड़ जाते और निरंजन बिना कुछ सोचे-समझे चल देता। छाया चुपचाप किवाड़ बन्द कर देती। उसके चेहरे की हँसी लुप्त हो जाती और उसपर घृणा के भाव बिखर जाते। सबेरे होश आने पर निरंजन छाया से क्षमा माँगता—"छाया अब कभी उधर न जाऊँगा।" आश्चर्य-चकित छाया प्रश्न करती "अच्छा तो मेरे प्रश्न का उत्तर दो, मेरे सिर पर हाथ रख के कहो, तुम्हें एक चीज मिलेगी—या तो शराब या मैं। बोलो, किसे अधिक चाहते हो? इन शब्दों को सुनकर निरंजन को हार्दिक दुःख होता। वह दुखी होकर कहता "छाया, मैं दुनिया में सबसे ज्यादा तुम्हें चाहता हूँ।" वह व्याकुल हो उठता।

"छाया, मैं इतना बुरा नहीं हूँ जितना तुम समझती हो।" छाया बड़प्पन के स्वर में कहती "उतने बुरे होने में देर ही कितनी लगती है?" निरंजन घबड़ाकर कहता "छाया।" छाया चुप हो जाती।

चसका बुरी चीज है। नशा बढ़ता ही गया।

× × × ×

छाया ने कई बार सोचा। वह घर पर सब हाल लिख दे, पर इसमें उसे अपना ही अपमान छिपा जान पड़ा।

एक रात निरंजन नशे की झोंक में कह गया "छाया, तुम मुझे बड़ा तंग करती हो, तुम एक बंधन हो। मेरे मित्र मुझे आने ही नहीं देते हैं। छाया, अगर तुम मर जाओ तो अच्छा हो।" छाया चौंकी। उसे दुःख हुआ। आज प्रथम बार उसने निरंजन के मुख से ऐसे वाक्य सुने। उसे ऐसा लगा घरवाले कह रहे हैं "एक पढ़ी-लिखी स्त्री होकर भी तुम पति को न सँभाल सकी।" वह क्रोध से अंधी हो गई। उसके कोमल हृदय में हथौड़ी की चोट के समान यह शब्द गूँजने लगे "अगर तुम मर जाओ तो अच्छा हो।" आगे बढ़कर वह बोली "निरंजन, इतना याद रखना, मेरे मरने पर तुम सुखी न रह सकोगे। तुम्हारे और दुनिया के बीच में एक ऊँची दीवार खिँच जायगी। तुम्हारा हृदय अशांत हो जायगा, तुम मेरे लिये रोओगे"—इतना कहती कहती क्रोध से काँपती हुई वह बाहर निकली। बेहोश निरंजन उसी प्रकार बड़-बड़ाता रहा। सर्दी की रातें थीं; उसका दिमाग गर्म हो रहा था। वह थोड़ी देर के लिये शांति चाहती थी। वह अपने बगीचे की ओर आगे बढ़ी। शरीर पर केवल एक महीन साड़ी थी। वह एक बेंच पर जाकर लेट गई और पता नहीं कब सो गई।

सहसा उसकी नींद टूटी। उसने आँखें खोलीं। चारों ओर अंधकार था। भय से वह काँप उठी। एक एक वृक्ष पर उसे अनगिनत भूत-प्रेत बैठे दिखाई दिए। उसने

उठने की कोशिश की पर सारे शरीर में दर्द हो रहा था और हाथ-पाँव ठंडे पड़े थे। भय के कारण जोश आया और वह तेजी से घर की ओर दौड़ी और कमरे में जाकर आवाज दी "निरंजन—निरंजन।" निरंजन चौंककर उठा। भयभीत छाया बुरी तरह चिल्ला रही थी "छाया, अगर तुम मर जाओ तो अच्छा हो। निरंजन, ऐसा मत कहो। मेरे मरने पर तुम सुखी न रह सकोगे।" निरंजन का माथा ठनका। उसे याद आया, यह सब वह अवश्य ही रात को नशे में कह गया है। लेकिन वह तो छाया को बहुत प्यार करता है। उसे अपनी भूल मालूम हुई। निरंजन घबड़ा गया। उसने छाया के शरीर पर हाथ रक्खा पर सब ठंढा था।

पल भर ही में इतिहासकार के घर डाक्टरों की भीड़ लग गई। किंतु छाया को कोई न रोक सका। उसे सर्दी लग गई थी और दिमाग में गर्मी चढ़ गई थी। वह लकड़ी की तरह सीधी पड़ी थी। घर पर तार दिया गया। छाया के माता-पिता, सास-ससुर, सब रिश्तेदार दौड़े आए। छाया ने एक बार आँखें खोलीं और निरंजन की ओर देखा। निरंजन को ऐसा लगा कि वह विश्वास के स्वर में कह रही है "मेरे मरने पर तुम कभी सुखी न रह सकोगे"। निरंजन ने कहा—"हाय, मेरी एक भूल ने मेरी छाया का अंत कर दिया—पर छाया, तुम भूलती हो। मैं तुम्हें दुनिया में सबसे ज्यादा प्यार करता हूँ।" उसने छाया के ऊपर झुककर

आवाज दी "छाया—छाया।" प्रतिध्वनि हुई "छाया—छाया।" उसके उत्तर में ऐंठा हुआ पड़ा था छाया का सुंदर शरीर।

× × × ×

पसीने से तर दुखी प्रोफेसर लेक्चर देते देते कभी कभी, बीच बीच में, सनकियों की तरह कह जाता था "हाँ, तो हर मनुष्य के जीवन में एक इतिहास छिपा होता है। उफ़, बड़ा ही करुण, बड़ा ही दर्द-भरा इतिहास!" लड़के देखते प्रोफेसर की आँखें सजल हैं। उनमें स्मृति के आँसू झलक रहे हैं।

सुधारक

"माँ, यह सब क्या हो रहा है ?" गंभीर आवाज से पुत्र ने पूछा।

"वाह, यह भी पूछने की बात है।" लापरवाही से व्रजमनी ने उत्तर दिया। वह साड़ियाँ तहाने में तल्लीन थी।

"मैं फिर भी कहता हूँ कि यह सब व्यर्थ जायगा। संसार में इस समय शादी और बच्चों की आवश्यकता नहीं है बल्कि उनके सुधार की आवश्यकता है। माँ, यह न होगा..." कहते-कहते जीवन रुक गया। कपाल पर हाथ रखकर सोचने लगा कि वह यह सब क्या कह गया। यह कालेज का स्टेज नहीं है कि जरा जरा सी बात पर तालियों और वाह वाह की ध्वनि से गूँज उठे। उसके सामने इस समय उसके पुराने विचारों के पिता और अपढ़ माता हैं, जो कि केवल वधू के ही आने की खुशी में मग्न हैं।

"क्या नहीं होगा ?" कहते कहते व्रजमनी ने साड़ियों पर से दृष्टि उठाकर पुत्र के चेहरे की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि डाली। गजाधर बाबू ने भी चिट्ठी-पत्रियों को जोर से पटकते हुए चश्मा जरा ऊपर चढ़ाया। एक बार गृहिणी

की ओर और फिर पुत्र की ओर देखकर गरज उठे "क्या कहा ? गजाधर बाबू का बेटा शादी न करके आवारों की तरह घूमता और लेक्चर देता फिरेगा ? जीवन, चाहे जो हो यह शादी होगी ही !" पति की बात से गृहिणी ने भी ताजगी का अनुभव किया। वह भी जरा तेज होकर गर्दन टेढ़ी करके बोली—"बहू तो अब इस घर में आएगी ही !" तर्कशील जीवन भी अपने को सँभालते सँभालते कह ही बैठा—तो मेरा उससे कोई भी संबंध न रहेगा।

× × × ×

अमीरों की शादी थी, पहिले ही से बड़ी धूम मच गई।

पीढ़े पर बैठा बैठा जीवन जरा जरा सी बात पर झुँझला उठता था। अंत में उसके हाथ में सेंदुर की डिबिया दी गई। किसी तरह झुँझलाकर जीवन उठा। औरतें सिर से पैर तक लाल कपड़े से ढकी, वधू की माँग खोलने का उप-क्रम करने लगीं। जीवन ने कसकर आँखें बंद कर लीं और अंधों की तरह जहाँ-तहाँ उसकी माँग में सेंदुर डालकर बैठ गया। अग्नि और भी प्रज्वलित हो उठी और औरतों का कंठ-स्वर भी क्रमश: ऊँचा उठता गया...

"साकी अनिल की देकर तुमने,
जिस तिय को स्वीकार किया।"...

जीवन के कान में गाने का हर एक शब्द गूँजने और दिमाग में रेकार्ड की तरह भरने लगा।

"उसे हृदय की प्रतिमा समझो।"

जीवन के दिमाग में द्वंद्व मच गया। फिर वह सोचने लगा—मुझे काहे की फिक्र ? शादी तो मेरे माँ-बाप कर रहे हैं किंतु मेरी प्रतिज्ञा भी अटल है। बहू मेरी कोई नहीं है—मैं तो उसकी छाया से भी दूर रहूँगा।

किसी तरह शादी हो गई। दूसरे दिन ही जीवन लड़-झगड़कर नागपुर (अपने कालेज में) चला आया। तीनों की इच्छाएँ पूरी हुईं। गजाधर बाबू ने कहा था कि यह शादी होगी ही और वह हो भी गई। गृहिणी ने कहा था कि बहू आएगी ही और वह भी आ गई। जीवन ने कहा था कि इससे उसका कोई संबंध न होगा और वास्तव में उसने उससे कोई संबंध नहीं रक्खा।

जीवन कालेज आकर पुनः अपने कार्यों में लीन हो गया। वह सुधारकों की श्रेणी में गिना जाने लगा था। पर अब लड़के उससे बराबर पूछने और तंग करने लगे—"वह कैसी है ? गोरी या काली ? आँखें कैसी हैं ? लंबान तुम्हारे कहाँ तक है ?" इत्यादि प्रश्नों से जीवन ऊब उठता पर उत्तर क्या दे ? वह तो कुछ जानता ही नहीं। इतना जरूर देखा था कि एक गठरी सी लाल कपड़े में लपेटी लुढ़कती-लुढ़कती उसके पास दूसरे पीढ़े पर बैठ गई थी। इससे अधिक वह कुछ नहीं जानता है और न इससे अधिक कभी जानने की कोशिश करेगा।

× × × ×

बी० ए० की परीक्षा समाप्त हुई। माँ-बाप ने जीवन की चिट्ठी खोली—"मैं इस शर्त पर आने को तैयार हूँ अगर पद्मा को उसके मायके भेज दिया जाय।" सास ने बहाने वगैरह करके पद्मा को मायके भेज दिया। पद्मा भी इन बातों को खूब समझती थी और मन ही मन सास-ससुर को पुत्र के साथ जबरदस्ती करने पर गालियाँ भी देती थी। वह रो-धोकर अपने आप फिर चुप भी हो जाती। कभी कभी पति के प्रति कुछ सम्मान के भाव भी आते। वह सोचती—क्या कोई इतना भी विरक्त हो सकता है? निश्चय ही वह सच्चा सुधारक है। फिर दूसरे ही क्षण उसके भाव बदल जाते। वह दिल ही दिल में जीवन को कोसती—"ईश्वर करे, एक दिन ऐसा आए कि तुम्हें स्त्री के पैरों की धूल चाटनी पड़े। जिस प्रकार मैं तुम्हारे पीछे परेशान रहती हूँ उसी प्रकार तुम भी एक स्त्री के पीछे परेशान रहो। स्त्री तुम्हारे लिये एक पहेली से ज्यादा चक्करदार हो।" पर ऐसे पति को, जिसकी उसने शक्ल भी न देखी थी, कहाँ तक गाली देती या कोसती।

उधर कुर्सी पर बैठा बैठा जीवन सोचता—मेरी शादी ह-हा! लाल कपड़े में लपेटी एक गठरी मेरी बगल में।

× × × ×

एक दिन लोगों ने सुना कि जीवन की कहीं ३००) की नौकरी लग गई है। एक बार तो सभी प्रसन्न हुए पर पद्मा का भविष्य सोचकर सारी खुशी हवा हो गई। अब जीवन अपने पैरों पर खड़ा है। भला अब वह किसकी परवाह करेगा? खुशी खुशी सास बहू से बोली "ले पद्मा, तेरे पति की नौकरी लग गई है, मीठा मुँह तो कर ले।" गर्विता पद्मा उठी। वह अपना क्रोध छिपाने में असमर्थ थी। मिठाई दूर फेंकती हुई बोली—किसका, कैसा पति? मैंने जिसकी अब तक शक्ल भी नहीं देखी है उस अपरिचित की नौकरी लगने की मुझे क्या खुशी?

ससुर ने भी पद्मा की बात सुनी। वे सन्न से रह गए। उन्हें जीवन की अंतिम चेतावनी याद आई "मेरा कोई दोष नहीं, शादी अब भी रोक दो।"

× × × ×

"परदेसी की प्रीति रे......।"

शान्त प्रकृति गूँज उठी। जीवन ने खिड़की से सिर निकालकर सामनेवाली छत पर देखा। तानपूरे के तारों को झंकृत करती हुई पतली पतली सुंदर उँगलियाँ नाच रही थीं। देवी के वरदान सी सुंदर युवती ने सुरीली किंतु दर्दीली आवाज से पुन: दुहराया—

"छोड़ गया, मुख मोड़ गया रे—"

जीवन को ऐसा लगा मानों यह युवती गाने ही में अपनी दर्द-भरी कहानी दुहरा रही है। जीवन मुग्ध सा खड़ा थोड़ी देर तक सुनता रहा—

"परदेसी की प्रीति रे—हाँ प्रीति रे..... "

जीवन ने सोचा—वह परदेसी कितना निष्ठुर होगा जो इस भुवन-मोहिनी को छोड़ने की हिम्मत कर सकता है। वह मन ही मन उस अपरिचित परदेशी को, उसकी निष्ठुरता पर, कोसने लगा। इन्हीं विचारों में लीन उसे कई मिनट बीत गए। फिर चौंककर वह पीछे हटा "छिः किसी युवती के विषय में सोचनेवाला मैं कौन ?" उसे अपनी कमजोरी पर ग्लानि हुई। वह खिड़की बंद करना ही चाहता था कि उसने सुना—

"सावन-जल मेरे नैनन से"।

जीवन ने अपने दिल से लड़कर तेजी से खिड़की बंद कर ली। सावन-जल बाहर ही बरसता रहा। जीवन कुछ चिंतित सा हो गया। खिड़की से टकराकर शब्द लौटने लगे।

"प्रीति रे..."।

स्त्रियों से घृणा करनेवाला जीवन रात भर इस अपरिचिता के विषय में सोचता रहा। उसके कान में गीत का अंतिम पद गूँजता ही रहा—

"सावन-जल मेरे नैनन से—"

जीवन सोचने लगा—क्या कोई इतना भी दुखी हो सकता है ? वह कहती है—सावन में जो इतना जल बरसता है वह केवल मेरे अश्रु ही हैं और कुछ नहीं। इन्हीं विचारों में सबेरा हो गया।

उठते ही जीवन ने अपने मित्र दिवाकर से पूछा "क्या तुम्हारे घर में कोई नए किराएदार आए हैं ?" मित्र ने उत्तर दिया—हाँ, एक अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की लड़की और उसकी दो साथिनें। वे सामनेवाले घर में ही ठहरी हैं।

"अच्छा।" जीवन ने धीरे से कहा।

× × × ×

इस घटना के कई दिन पश्चात्, एक दिन दिवाकर ने अपने इष्ट-मित्रों को एक पार्टी दी। एक निमंत्रण अपने नए किराएदार के यहाँ भी भेजा। ठीक समय पर सब आए। अपने मित्रों के बीच में जीवन ने उन दो चमकीली, सुंदर किंतु वेदनामयी आँखों को भी पहचान लिया जो शायद अब भी मूक-भाषा में गा रही थीं "प्रीति रे—"

युवती ने भी युवक की आँखों में स्नेह और अपनापन देखा। वह झिझक उठी। उसकी आँखों में विषाद की रेखा खिंच गई।

बात-चीत के सिलसिले में जीवन ने पूछा "नैनीताल से आपका शुभागमन किस उद्देश्य से हुआ ?" "केवल घूमने की इच्छा से।" यह उसका संक्षिप्त उत्तर था। जीवन

ने देखा—वह भयभीत हो गई और कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी हुई। "देर हो रही है, अच्छा अब चलती हूँ।" जीवन ने लक्ष्य किया कि वह अपना परिचय बिलकुल नहीं देना चाहती है।

× × × ×

एक दिन जीवन ने सुना 'मुना' यानी 'वह' जानेवाली है। जीवन अंतिम दिन उससे मिलने गया। इधर-उधर की बातों में उसने कहा "मैं कल इलाहाबाद जा रही हूँ, वहीं मेरा घर है।" जीवन आश्चर्य से उछल पड़ा—"वहाँ तो मेरा भी घर है।" यकायक मुना के मुँह से निकल गया "आप भी शायद कल जायँगे। ट्रेन का तो साथ हो ही जायगा। क्या ही अच्छा हो यदि साथ ही चलें!" जीवन राजी हो गया।

ट्रेन में जीवन ने कई बातों को लक्ष्य किया। उसे उसकी दोनों साथिनें केवल 'मुना' ही कहकर बुलाती हैं। किंतु जीवन को असली नाम पूछने की हिम्मत नहीं पड़ी, यद्यपि वह जानता था कि 'मुना' केवल प्यार ही का नाम है।

अंधकार फैलने लगा। मुना अपनी किताब बंद करके एक सीट पर लेट गई और थकी होने के कारण शीघ्र ही सो भी गई। सहसा जीवन की दृष्टि मुना पर पड़ी। उसके सिर का पल्ला खिसक चुका था। जीवन ने उसकी माँग में सिंदूर की धुँधली रेखा देखी जो प्राय: मिट सी रही थी। जीवन ने कई बार देखा मानों उसे विश्वास ही न हो

जीवन को इस पर पश्चात्ताप और दु:ख हुआ कि एक विवाहिता के साथ मित्रता सम्पादित करना कहाँ तक ठीक है। उसने केवल मुना को उदास देखा था इसी लिये वह उसकी ओर आकृष्ट हुआ कि शायद उसकी कुछ मदद कर सके। इसी बीच में मुना जागी। जोवन ने उसके चेहरे के भावों को पढ़ने की कोशिश की। जीवन ने सोचा—हो सकता है कि इसके पति में दुर्गुण हो अथवा वह इसे प्यार न करता होगा तभी यह इतनी दुखी रहती है। जीवन ने उस एकांत में शपथ खाकर प्रतिज्ञा की कि वह अवश्य ही उसके पति को सुधारेगा और तभी अपने को सुधारक समझेगा।

× × × ×

इलाहाबाद स्टेशन पर सब उतरे। मुना की दोनों साथिनें एक टाँगा करके अपने घर चली गईं। जीवन ने परिचय पूछने को मुँह खोला पर उसकी हिम्मत जवाब दे गई। अंत में मुना ने जीवन से बिदा ली और एक टाँगा करके चल दी। कई मिनटों पश्चात् जीवन को होश आया। उसने अपने मन को तसल्ली दी—अच्छा हुआ एक आफत से छूटा कि उसका पता नहीं मालूम हुआ। अब कभी मिलने का मन नहीं करेगा। उसने भी एक टाँगा किया और घर की ओर चला।

रास्ते में जीवन को याद आया कि वह जल्दी में घर पर चिट्ठी लिखना भूल गया है कि पद्मा को उसके मायके भेज दिया जाय।

वह हिचकिचाता हुआ घर की ओर बढ़ा। उसने निश्चय कर लिया कि वह बाहर बैठक ही में रुकेगा जब तक कि पद्मा अपने किसी रिश्तेदार के घर न भेज दी जायगी।

टाँगे से उतरते ही जीवन ने देखा कि एक टाँगा और खड़ा है, और उसमें से एक युवती उतरने का उपक्रम कर रही है। दोनों ने आश्चर्य से एक दूसरे को देखा। जीवन चिल्लाया—मुना, तुम यहाँ कहाँ?

भयभीत मुना खीझकर बोली—आप यहाँ क्यों आए? कोई देखेगा तो क्या कहेगा? यह मेरा घर है। मैंने आपको शरीफ समझा था पर आप उल्टे निकले। जरा सी जान पहिचान में ही पराई युवतियों के साथ उनके घर तक पीछा करना कहाँ की भलमनसाहत है?

"मुना—मुना रुको—" पर मुना तेज मशीन की तरह कहती गई—"मैंने आपको पहिचानने में भूल की। पर अब लौट जाइए। खबरदार, अब कभी भूलकर इस घर में पैर मत रखिएगा—नहीं तो ठीक कर दिए जायँगे।" क्रोधित होकर काँपती हुई मुना कहती गई।

भौचक्का-सा जीवन आगे बढ़ा—"क्या कहा? क्या कहा? मुना मजाक छोड़ो और लौट जाओ। मैं सुधारक हूँ। अगर घर में कोई मुझे तुम्हारे साथ देख लेगा तो क्या कहेगा? पर—तुम्हें मुझसे मिलने की जरूरत हो तो—"

पद्मा बिगड़कर बोली—"चुप रहिए। किसी के घर को अपना घर बनाना, आपके लिये तो यह खिलवाड़ है पर मैं तो कहीं की न रहूँगी। फिर भी आप खड़े क्यों हैं? सुधारकजी, आप मेरा सुधार करने के बदले चारों ओर से मुझे बिगाड़ देंगे।" मुना का क्रोध उत्तरोत्तर बढ़ता गया—मैं कहती हूँ, मुझे आपके साथ सख्ती से पेश आना पड़ेगा। सुन लीजिए, मेरा पति भी एक सच्चा सुधारक है—मैं उसकी इज्जत करती हूँ। पर वह आप जैसे सुधारकों की तरह स्त्रियों से बहस नहीं करता।

जीवन का दिमाग चक्कर खा गया। वह संदूक का सहारा लेकर खड़ा हो गया। धीरे से उसने पूछा—आपके पति का शुभ नाम?

पद्मा गर्वित पर दुखी होकर बोली—मैं मि० जीवन की त्यागी हुई पत्नी पद्मा हूँ।

जीवन उछल पड़ा—"मैं—मैं जीवन—तुम पद्मा"—वह उसे पकड़ने को आगे बढ़ा पर पद्मा पूरी बात समाप्त होने के पहले ही घर की ओर भागी।

नौकर ने सामान अंदर रक्खा। धीरे धीरे प्रसन्न-चित्त जीवन घर में घुसा। माता-पिता को अभिवादन किया। फिर आवाज दी—पद्मा, अपना सामान तो देख लो। ठीक है न?

माता-पिता को अधिक देर आश्चर्य में न रखकर जीवन ने धीरे धीरे सारी घटनाएँ सुना दीं। किस प्रकार वह

अपने मित्र दिवाकर के आग्रह से नैनीताल गया और फिर क्या क्या हुआ। किस प्रकार वह अपरिचिता मुना के दुःख से दुखी हुआ और फिर कैसे उसके पति को सुधारने की प्रतिज्ञा की। और सबसे अंत में मुना ने फटकार सुनाई। फिर माँ-बाप की ओर देखकर मुस्कराकर जीवन बोला—पर आपकी बहू है बड़ी पक्की। उसने मुझे कभी अपना परिचय ठीक से दिया ही नहीं, नहीं तो यह मामला कभी इतना रहस्यमय न होता।

बहू की ओर पक्षपात की दृष्टि से देखता हुआ पिता बोला—भले घर की बहुएँ तुम्हारे जैसे आवारे सुधारकों को अपना परिचय नहीं दिया करती हैं, क्यों न बहू ?

पद्मा ने नीची दृष्टि करके, सिर हिलाकर, ससुर की बात का अनुमोदन किया।

× × × ×

"क्योंजी, तुमने तो अपनी स्त्री की छाया तक न देखने की प्रतिज्ञा की थी, सो अब क्या हुआ ?" हँसती हुई पद्मा ने पूछा। गंभीर चेहरा बनाकर जीवन बोला—किंतु अपनी नैनीतालवाली अपरिचिता मुना से तो न मिलने की प्रतिज्ञा मैंने कभी नहीं की थी।

माँग में सेंदुर उलटता हुआ जीवन बोला—आओ मुना, तुम्हारी माँग चटकीली कर दूँ। फिर स्वयं ही गाने लगा—

उसे हृदय की प्रतिमा समझो,

मूर्तिकार का हृदय

वह चित्रकार थी—एक प्रसिद्ध चित्रकार। उसका नाम था 'माधुरी'। उसके हाथ के बने चित्रों को देखकर लोग आश्चर्य में डूब जाते थे। धीरे धीरे अपनी ख्याति के साथ ही उसे अपने चित्रों पर अभिमान हो गया था, क्योंकि उसे विश्वास था कि उसकी सी ख्याति और किसी को प्राप्त हो ही नहीं सकती।

वह स्वयं भी एक चित्र के समान सुंदर थी। उसका स्वर्ण-सा चमकता हुआ रंग चित्र बनाते समय उत्सुकता से और अधिक चमक उठता था, और वह बड़ी बड़ी झाँकती हुई आकर्षक आँखें जिन पर पड़ जाती थीं वे सब चित्रलिखित-से हो जाते थे। जिस समय वह अपनी पतली पतली कलामयी उँगलियों में कूँची लेकर रँगने बैठती थी उस समय उसका माधुर्य देखते ही बनता था।

× × × ×

माधुरी एक उच्च खानदान की लड़की थी। उसका पिता पुराने विचारों का एक धार्मिक व्यक्ति था। वह अपनी

एकलौती मातृ-विहीन पुत्री को प्राणों से अधिक प्यार करता था। वही उसके उजड़े उपवन की सुकुमार कली थी। बचपन से ही चित्रकला की ओर माधुरी का ध्यान देखकर उसने उसे चित्रकला सिखलाने का पूरा प्रबंध कर दिया था। माधुरी को हर प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। सर्व प्रथम जिस समय उसने अपनी स्वर्गीय माता का चित्र बनाकर पिता को दिखाया उस समय बूढ़ा प्रसन्नता से नाच उठा; अतीत के घाव पुन: नए हो गए। उसने माधुरी को अनेक आशीर्वाद देकर हृदय से लगा लिया। धीरे धीरे पूर्णिमा के चाँद की तरह माधुरी बढ़ती ही गई।

× × × ×

वह एक मूर्तिकार था, और माधुरी का प्रतिद्वंद्वी। उसकी मूर्तियाँ सजीव-सी मालूम पड़ती थीं। सब उससे स्नेह करते थे, पर माधुरी के अभिमानी हृदय में उसका नाम सुनते ही एक भीषण अग्नि जलने लगती थी। पता नहीं क्यों? इसे वह स्वयं भी न समझ सकती थी। माधुरी चित्रकार थी; वह था मूर्तिकार। दोनों ही प्रसिद्ध थे; दोनों ही को लोग चाहते थे; पर आपस में एक दूसरे का नाम सुनकर दोनों ही घृणा से मुँह फेर लेते थे; दोनों ही एक दूसरे से घृणा करते थे यद्यपि दोनों ने एक दूसरे को देखा भी न था; दोनों ही एक दूसरे से पूर्णतया अपरिचित थे। हृदय में अग्नि जलती थी पर भीतर ही भीतर। माधुरी अपने

प्रतिद्वंद्वी को देखने के लिये उत्सुक थी और नरेंद्र मूर्तिकार माधुरी को।

× × × ×

दिनकर अपनी गुलाबी रश्मियों से उषा के साथ होली खेल रहे थे और नीचे पहाड़ी झरना अपने हृदय में प्रीतम की मधुर स्मृति लिए एक मधुर संगीत के साथ उसे ढूँढ़ने को बह रहा था। चारों ओर सौंदर्य, प्रेम और प्रकृति का राज्य था।

माधुरी हाथ में चित्र और कूँची लेकर झरने के किनारे आकर बैठ गई। हृदय में कितनी ही स्मृतियाँ थीं और उसके प्रति, जिसका वह नाम भी न जानती थी, कितने संदेशे थे। धीरे धीरे वह एक चित्र बनाने में तन्मय हो गई।

थका हुआ, मधुर स्मृतियों की गोद में झूमता हुआ मूर्तिकार भी अपनी इष्ट देवी की मूर्ति बनाने के लिये हाथ में पत्थरों और औजारों को लेकर वहीं आया। उसकी दृष्टि बिना प्रयास ही स्थिर हो गई। वह चौंका, 'हैं! यह यहाँ कहाँ?—जिसकी मूर्ति मेरे हृदय में एक ही दृष्टि में दूर से ही स्थापित हो चुकी थी वह यहाँ कैसे?' उसे वह दिन याद आया जब दोनों ने पहली बार एक दूसरे को पुस्तकालय में देखा था और आज कितने ही दिनों बाद दोनों एक दूसरे के इतने निकट हैं। उसने देखा, वह सुंदरी फिर भी भूली सी झरने में पैर डाले एक चित्र बनाने में मग्न है। मूर्तिकार

भी अनमने मन से मूर्ति बनाने में लग गया। पेड़ों की कुछ छाया पड़ती थी अतः माधुरी उसे न देख सकी।

'अहा–हा–हा—कैसा कैसा सुंदर चित्र है।' माधुरी अपनी सफलता पर दिल खोलकर हँस रही थी। उसने स्वप्न में भी न सोचा था कि यहाँ उसके सिवाय कोई और भी है। "नरेंद्र मूर्तिकार! माधुरी की बराबरी करने का साहस न करना। माधुरी तुमसे सख्त नफरत करती है, अपनी मूर्तियों से माधुरी के चित्रों का मूल्य घटाना चाहते हो?"—माधुरी न जाने क्या क्या कहती ही गई। सचमुच उसका आज का चित्र एक अलौकिक वस्तु थी।

मूर्तिकार नरेंद्र काँप उठा "हैं! यह सौंदर्य की प्रतिमा, मेरी प्रेमिका निष्ठुर माधुरी है। अगर वह जान पाएगी कि उसका प्रेमी नरेंद्र है तो उसे कितना धक्का लगेगा, वह पागल हो जायगी, मुझसे नफरत करेगी। ओफ! मैंने यह स्वप्न में भी न सोचा था कि मैं अपने ही दुश्मन से प्रेम करूँगा।" वह काँपा और एक पत्थर का टुकड़ा जोर की आवाज करता हुआ जमीन पर गिर पड़ा।

माधुरी चौंकी! उसने भय से चारों ओर देखा। देखा—वही खड़ा है जिसकी स्मृतियाँ उसे प्यारी हैं। आज पहली बार श्रद्धा से उसका मस्तक किसी के सामने झुका। वह आगे बढ़ी। नरेंद्र ने उसका स्वागत किया।

"आप बहुत सुंदर मूर्ति बनाते हैं" उसने कहा। नरेंद्र हँसा। उसके हृदय ने ध्वनि की "अगर आप मेरा नाम जान पातीं तो घृणा की निगाहों से मूर्ति और मुझे दोनों को जला डालतीं।" पर माधुरी हृदय की बात न सुन सकी। भुवनमोहिनी माधुरी बोली "क्या मैं आपका नाम जान सकती हूँ?" नरेंद्र पर बेहोशी छाने लगी। सँभल सोच-कर बोला "मुझे लोग मोहन कहते हैं। मैं मूर्तियाँ बनाने की कोशिश करता हूँ।" मोहन के हृदय ने मूक भाषा में कहा "झूठ! कह दो तुम्हारा प्रतिद्वंद्वी नरेंद्र मूर्तिकार!" उठते हुए नरेंद्र ने कहा—"क्या मैं भी आपका नाम जानने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता हूँ? यद्यपि हम लोगों ने एक दूसरे को इतनी बार देखा है; पर नाम जानने का सौभाग्य अब तक प्राप्त नहीं हुआ।" मुस्कराती हुई बोली "मेरा नाम माधुरी है, मैं चित्रकार हूँ।" नरेंद्र बोला "आपका और नरेंद्र मूर्तिकार का नाम किसने नहीं सुना है! पर नरेंद्र को तो मैं जानता हूँ; उसकी मूर्तियों में तो कुछ भी सुंदरता नहीं है। बड़ा झूठा आदमी है।" प्रसन्नतापूर्वक माधुरी बोली—"मैं नरेंद्र मूर्तिकार से बड़ी घृणा करती हूँ। अंधी दुनिया, पता नहीं, क्यों उसकी मूर्तियों को इतना पसंद करती है। मोहन मूर्तिकार, नरेंद्र से अच्छी मूर्तियाँ तो तुम्हीं बनाते हो।" मोहन काँप उठा पर बातों में उलझी हुई माधुरी इसे लक्ष्य न कर सकी।

इसी प्रकार वे दोनों प्रतिदिन मिलते। माधुरी अपने बनाए चित्रों को दिखलाती और नरेंद्र अपनी मूर्तियों को। माधुरी नरेंद्र की तारीफ करती और नरेंद्र माधुरी की। दोनों ही नरेंद्र मूर्तिकार की बुराई करते और उसे कोसते थे।

प्रणयांकुर बढ़कर वृक्ष का रूप धारण कर रहा था।

× × × ×

"मोहन, देखो हिलना नहीं।" "माधुरी, देखो हिलना नहीं।" दोनों इसी प्रकार रोज एक दूसरे के सामने बैठते और एक दूसरे को न हिलने की आज्ञा देते थे। माधुरी नरेंद्र का चित्र बनाने का और नरेंद्र माधुरी को मूर्ति बनाने का प्रयत्न करता। थोड़ी देर बाद आज्ञाओं के बंधन ढीले पड़ जाते। दोनों बातों में इतने अधिक उलझ जाते कि माधुरी का चित्र और मोहन की मूर्ति कभी समाप्त ही न होती। इसी प्रकार कितना प्रयत्न करने पर भी माधुरी नरेंद्र का चित्र और नरेंद्र माधुरी की मूर्ति बनाने में कभी भी सफल न हो सके।

× × × ×

एक दिन क्रोध से काँपती हुई माधुरी बोली "मोहन सुनो, नरेंद्र अपने आगे किसी को कुछ समझता नहीं है। वह मेरा अपमान करना चाहता है। कल मैंने उसकी दूकान पर अपनी आधी बनी हुई मूर्ति देखी है। भला,

तुम्हीं बताओ उस दुष्ट को मेरी मूर्ति बनाने का क्या अधिकार! क्या मैंने कभी उसका चित्र बनाने का प्रयत्न किया है!" नरेंद्र धीरे से बोला "किया तो है।" पर माधुरी तूफान-मेल की तरह बढ़ती ही गई, "क्या तुम उससे इसका बदला न लोगे? तुम्हें उसकी आधी बनी मूर्ति लानी होगी और मेरे सामने चूर चूर करनी ही होगी। लाओगे न।" माधुरी अपना बात पर अड़ी रही। नरेंद्र बोला "हाँ, लाने का प्रयत्न अवश्य करूँगा।" फिर धीरे से हँसकर बोला—जब मैं तुम्हारी मूर्ति बनाऊँगा तब तो उसे तोड़ देने को नहीं कहोगी?

माधुरी टहलते टहलते सुनकर बोली—जब मैं तुम्हारा चित्र बनाऊँगी तब तुम तो उसे नष्ट नहीं करोगे?

दोनों हँसने लगे।

दूसरे दिन नरेंद्र माधुरी की आधी बनी मूर्ति को ले आया। माधुरी ने 'दुष्ट नरेंद्र, इतनी धृष्टता" कहकर मूर्ति के टुकड़े टुकड़े कर डाले और साथ ही स्वयं भी थककर चूर चूर हो गई।

नरेंद्र की इतने दिनों की मेहनत पर पानी फिर गया। वह हँसता ही रहा। "दुष्ट नरेंद्र, तुम्हारे साथ माधुरी ने ठीक किया है। तुम इसी योग्य हो।" इसी प्रकार सुख के सुनहरे दिवस बीत रहे थे।

× × × ×

धीरे धीरे काली घनघोर घटाएँ घिर आईं। माधुरी चिंतित सी रहने लगी। उसके पिता के एक दोस्त के लड़के के साथ माधुरी की शादी तय हो चुकी थी। यह बात माधुरी को सता रही थी। उसका पिता छुटपन से ही अपने दोस्त के साथ प्रतिज्ञा-बद्ध था। पर माधुरी ने स्वप्न में भी मोहन को छोड़कर और किसी के साथ विवाह की बात सोची भी न थी। जिस समय उसके बूढ़े पिता ने माधुरी से कहा "मैंने तुम्हारी शादी तय कर दी है और उसके साथ हर हालत में तुम्हारी शादी होगी;" उस समय माधुरी दुःख में पागल हो गई।

वह टूटे हृदय से भारी कदम बढ़ाती हुई मोहन के घर की ओर चली। उसने सुना वही पुराना परिचित 'कर—कर—कर।' नरेन्द्र माधुरी की मूर्ति बनाने में मग्न था। दुःख से व्याकुल माधुरी ने पुकारा "मोहन।" चकित हो नरेन्द्र बोला 'अरे माधुरी! तुम इस समय यहाँ कहाँ!" आखिर सँभलते सँभलते वह रो ही दी। "मूर्तिकार! तुम मेरी मूर्ति कभी भी न समाप्त कर सकोगे। मैं जा रही हूँ। कुछ दिनों में मेरी शादी होगी!" मूर्तिकार घबड़ा उठा। माधुरी की अधूरी मूर्ति गिरी सी जान पड़ी। एक आनेवाली आशंका से उसका हृदय काँप उठा! माधुरी बोली "मोहन! माधुरी अब तुम्हारी कोई नहीं है, उसे भूल जाना; उसने तुम्हें बड़ा तंग किया है। मोहन! ईश्वर तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल करे। मेरे जाने पर

नरेंद्र कितना सुखी होगा कि मेरा कंटक निकल गया। ईश्वर नरेंद्र को कभी सुखी न रक्खे।" माधुरी रुकी।

"अब मैं कुछ नहीं सुन सकता हूँ माधुरी, बोलो। मेरे हृदय को चूर चूर करके, मुझे रोता छोड़कर, कहाँ जा रही हो?"

इसके बाद भी वे कई दिन तक बिना प्रयास के मिलते रहे। दोनों को एक दिन भी एक दूसरे को देखे बिना कल न थी पर अब वे बातें करने की अपेक्षा रोते अधिक थे। माधुरी की स्थिति पागलों की तरह थी और नरेंद्र तो ऐसा हो गया था मानो बिना प्राण का हो।

× × × ×

"मोहन! तुम नरेंद्र मूर्तिकार को मूर्तियाँ बनाने में हरा देना। मेरी जगह तुम लेना। तभी मुझे प्रसन्नता होगी।" इतना कहकर व्याकुल सी माधुरी अपने पति के साथ ससुराल बिदा हो गई। और पागलों सा नरेंद्र भी घर लौटा।

वह सुख के दिन स्वप्न से क्षणिक हो गए।

× × × ×

उधर लोग देखते नव-वधू व्याकुल-सी रहती, मानों किसी को खोज रही हो। लोग सोचते, चित्रकार है किसी नवीन चित्र के बनाने की फिक्र में होगी। धीरे धीरे उसके शरीर की चमक जाती रही, वह बेहोश-सी, लुटो-सी रहने लगी। नींद में बातें किया करती। जब होश में आती तो एक अधूरे चित्र को लेकर बनाने बैठ जाती, पर वह चित्र कभी भी समाप्त न होता।

माधुरी का स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया।

इधर जब भी कोई मूर्तिकार नरेंद्र के कमरे से निकलता तो वह सुनता 'कट् कट् कट्'। चाहे रात हो चाहे दिन। वह सदैव एक अधूरी मूर्ति को बनाने में मग्न रहता। उसके बाल बढ़ गए थे, चेहरा सूख गया था, आँखें नींद में किसी की स्मृति को लिए भरी रहती थीं। वह पागलों की तरह दीवारों से बातें किया करता था।

× × × ×

"माधुरी, क्या बना रही हो?"

माधुरी के दूर के रिश्ते का भाई आया हुआ था, आखिर वह पूछ ही तो बैठा। माधुरी ने चित्र छिपाने की चेष्टा की, पर व्यर्थ। उसने चित्र देख ही लिया "अरे, नरेंद्र मूर्तिकार का चित्र बना रही हो? वह पागल तो बीमार है।" माधुरी ने क्रोध से मुँह फेर लिया। उसके चेहरे पर घृणा के पुराने भाव फैल गए "मेरे प्रतिद्वंद्वी का नाम मत लेना, यह तो मेरे मोहन का चित्र है।" इतना कहते कहते माधुरी रो दी। सारा अतीत-काल उसकी आँखों के आगे घूम गया "पागल हो माधुरी। यह नरेंद्र का चित्र है? देखो यह अखबार। आज ही उसका चित्र निकला है।"

माधुरी का सारा शरीर काँप उठा। वह अपने मोहन के लिये व्याकुल हो उठी। उसने आँखें उठाकर अखबार की ओर देखा। वह चिल्लाई "धोखेबाज! नरेंद्र, तुम्हीं मेरे

मोहन हो।" नरेंद्र के चित्र के नीचे बड़े बड़े अक्षरों में लिखा था।

"भारत के प्रसिद्ध मूर्तिकार रुग्णावस्था में"

माधुरी सिर पकड़कर बैठ गई और गुनगुनाई—"निष्ठुर! तुमने पहले क्यों नहीं बताया कि मैं नरेंद्र मूर्तिकार हूँ। मैं पागल सदैव ही अपने नरेंद्र का अमंगल मनाती रही तो मंगल कैसे होता! तुमने मेरे प्रेम के लिये अपने को जला डाला।" बीमार माधुरी इतने दिन के संचित रहस्य का यों खुलना न देख सकी। यह उसके हृदय पर सबसे रहस्यमय आघात था। एक एक करके सारी घटनाएँ उसकी आँखों के आगे घूम गईं। फिर चित्र के मोटे मोटे काले काले बड़े शब्द आए 'भारत के प्रसिद्ध मूर्तिकार रुग्णावस्था में।" उसके हृदय में एक दर्द सा उठा, एक चीख निकली "मेरे मोहन" और सब समाप्त हो गया। एक ही मिनट में वह हिलता डुलता पीला कमजोर शरीर सदैव के लिये स्थिर और शांत हो गया। सब चिल्लाए—"वधू का हार्ट फेल।"

चित्रकार माधुरी का 'हार्ट फेल'—यह खबर चारों ओर बिजली की तरह फैल गई। अखबार चिल्लाए "भारत की अमूल्य निधि खो गई, माधुरी का हार्टफेल"।

'कट ..कट...कट' वह मूर्तिकार से बोला—नरेंद्र, तुमने कुछ सुना "चित्रकार माधुरी का हार्ट फेल हो गया। यह

देखो अखबार” इतना कहते हुए नरेंद्र के एक दोस्त ने प्रवेश किया। “हैं! क्या कहा? मेरी माधुरी का हार्ट फेल!”—दोस्त पढ़ता ही गया।

मूर्तिकार के हाथ काँप गए और गिर पड़ी माधुरी की वह मूर्ति टुकड़े टुकड़े होकर। उसके साथ हो हो गया टुकड़े टुकड़े उस पागल मूर्तिकार का हृदय।

वह जंगलों की ओर दौड़ा। सब जगह लोग कह रहे थे “माधुरी का हार्ट फेल।” मूर्तिकार दौड़ता ही गया। सारी प्रकृति मानो गूँज रही थी 'माधुरी का हार्टफेल'। मर्तिकार की आँखों के आगे घूम रही थी वह टूटी हुई अधूरी मूर्ति और कान सुन रहे थे “माधुरी का हार्ट फेल।”

× × × ×

पहले दिन अखबारों में जहाँ माधुरी के हार्ट फेल की खबर छपी थी उसी जगह दूसरे दिन लोगों ने पढ़ा, उसी तरह उन्हीं मोटे अक्षरों में “हार्ट फेल हो जाने से नरेंद्र मूर्तिकार की मृत्यु हो गई।”

सती का प्रतिशोध

कितना सुंदर है यह पहाड़ी प्रांत ! इसी प्रांत के कण-कण में मेरा अतीत समाया है। हर एक पहाड़ी के वक्षः-स्थल पर मोटे और गहरे अक्षरों में मेरे जीवन का इतिहास लिखा है। मैं डरती हूँ; खड़े हुए ऊँचे ऊँचे जंगली वृक्ष मानो मेरी ओर भेद भरी निगाहों से देखते हैं। मेरे चारों ओर एक अग्नि जलती है और उसी के साथ मुझे अपना हृदय भी धधका सा जान पड़ता है। एक दूसरे से सटी हुई पहाड़ियों ने मुझे बंदिनी बना रखा है। उड़ती हुई पहाड़ी चिड़िया, पता नहीं अपनी कठोर आवाज में क्या क्या सुनाती हुई, उड़ जाती है। अरुण मेरे कपाल पर कुछ कुछ लिख जाता है, और रजनी आकर रगड़ देती है। मैं सब कुछ समझने की कोशिश करती हूँ पर कुछ भी नहीं समझ पाती। मैं अपने हाथों की ओर देखती हूँ, वे मुझे रक्त से रँगे दिखलाई देते हैं। सारा अनंत गंभीर पर अशांत दीखता है। कितने ही वर्ष बीत गए पर मुझे तो यह सब कल की ही सी घटनाएँ लगती हैं।

× × × ×

वह भी जीवन का एक सुनहरा प्रभात था जब मैं एक पहाड़ी के घर की रानी बनकर आई थी। झुके हुए बादलों ने मेरा स्वागत किया था; पक्षिगण भी मेरे सुहाग के गाने गा रहे थे। उल्लसित ध्वनि एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी को गुँजाकर मुझे पुकारती थी 'झरना! झरना!' वह भी एक उमर थी। मैं भी मस्त झरना पहाड़ों के वक्षःस्थल पर केलियाँ करने लगी। वह एक ऐसा समय था, जब सारी प्रकृति मेरे सुख में सम्मिलित थी।

वह एक अँधियारी काली संध्या थी जब सहसा मेरी मोह-निद्रा टूटी! मुझे आकाश में दुख के काले काले बादल फिरते दीख पड़े और इतने बड़े अनंत आकाश के कोने में अग्नि-सी जलती दिखलाई पड़ी। मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठा।

"रुको तरुणी, इतनी शीघ्रता क्यों?" मैं ठिठकी, घूमकर देखा और पहचाना भी। वह प्रांत का सबसे बड़ा जमींदार हीरासिंह था। मेरी भौंहों पर बल पड़ गए पर मैं थी स्त्री। कतराकर, सँभलकर, आँख बचाकर निकल जाना चाहा। वह सामने आया और उसने प्रश्न किया—'मुझे जानती हो?' काँपते हुए पर उत्तेजित कंठ-स्वर से मैंने उत्तर दिया 'पराई स्त्रियों का रास्ता रोकनेवाले का परिचय मुझे नहीं सुनना है।' वह बोला—"इतना गरूर! देखें कब तक

मुझसे बचती हो।" वह क्रोधित होकर चला गया पर डाल गया मेरे ऊपर एक ऐसी दृष्टि कि मैं चौंक पड़ी! वह दृष्टि मेरे हृदय-पटल पर बार बार अँधेरे में बिल्ली की आँखों की तरह चमकने लगी। मैंने उसे भूलने की कितनी कोशिश की पर न भूल सकी। बोझा ढोकर लौटी पर कानों में शब्द गूँज रहे थे 'देखें कब तक बचती हो।' मैंने घबड़ाकर कानों पर हाथ रख लिया, पर पहाड़ी (पतिदेव) पूछ ही तो बैठा— 'झरना, उदास क्यों हो?' मैंने टाला 'थक गई हूँ'। इतने बड़े जमींदार के प्रति मुँह खोलने की शक्ति मुझमें न थी। मान लो, अगर मैं कह भी देती तो निश्चय था वीर पहाड़ी जमींदार के खून का प्यासा हो जाता। पर हम गरीब थे। इसमें अधिक हमारी ही हानि की संभावना थी। जमींदार क्षणों में हमें लुटवा सकता था।

इसी प्रकार दिन बीतते गए पर हीरासिंह का अत्याचार बढ़ता गया। मुझे बाहर निकलने में भी डर मालूम पड़ने लगा, अतः मैं प्रायः घर पर ही रहने लगी। पहाड़ी मुझसे प्रेम करता था, उसे मुझ पर गर्व था पर अब उसके स्वभाव में परिवर्तन होना शुरू हो गया था। वह कभी कभी बड़ा रूखा हो जाता था। एक दिन काम से लौटने पर वह मुझे डाँटने लगा—झरना! इतनी नवाबी करोगी तो कैसे काम चलेगा? आखिर सभी औरतें काम करती हैं। सुंदरता होने से नाजुकपन नहीं आ जाता है, आखिर मैंने तुझे ब्याहा

ही किस लिये है ?" तेज मशीन की भाँति एक साँस में ही पहाड़ी सब कुछ कह गया। मैं हृदय थामकर सुनती रही। उसकी डाँट का हर एक शब्द सिखाया हुआ लग रहा था—भाव-भंगी विचित्र हो रही थी। काँपते हुए, पर प्रार्थना के, स्वर में डरते डरते 'मुझे बाहर निकलते डर लगता है'—कहते कहते मैं रो पड़ी। मेरी आधी बात काटकर ही वह प्रेम से बोला—झरना, आँसू क्यों गिराती हो ? मैं किसके लिये कमाता हूँ ? तुम्हारे लिये ही न ? तब अगर तुम डरती हो तो मत जाया करो। मैंने आज तुमसे इसी लिये कह दिया, क्योंकि जमींदार मुझसे रोज कहता है कि जोरू को इतना सिर चढ़ाकर रखना ठीक नहीं। उसे काम पर भेजा करो।

पहाड़ी की प्रेम-पूर्ण बातों से मेरे अश्रु बंद होने के बदले बढ़ते ही गए। मैंने पहाड़ी के निकट जाकर भारी हृदय से उसे जमींदार की सभी बातें बता दीं। वीर पहाड़ी सुनते ही जमींदार से बदला लेने के लिये, छेड़े हुए शेर की तरह, भड़क उठा। मैंने उस दिन उसमें एक विचित्र जोश और गर्व देखा। मैं मुग्ध हो गई, समझी कि विपत्तियाँ टलीं।

उधर हीरासिंह जाल फैला रहा था। वह मेरे ऊपर का सारा क्रोध पहाड़ी पर उतारने लगा। उससे वह कस-कर काम लेने लगा। मेरे पहाड़ी को वह आधी आधी रात तक काम पर रखने लगा। मैं चिंतित रहने लगी। एक दिन अधिक रात गए वह घर लौटा। उसके गले में दर्द

हो रहा था, हाथ-पाँव थोड़े थोड़े सूज गए थे। उसकी आँखों के भाव को देखकर मैं किसी भावी आशंका से काँप उठी। किंतु बहुत मना करने पर भी वीर पहाड़ी हँसता हुआ काम पर जाने लगा।

× × × ×

एक खूनी प्रभात को मैंने देखा, कई आदमी पहाड़ी को कंधे पर लादे ला रहे हैं। मेरा हृदय बैठने लगा। पहाड़ी ने मेरी ओर देखा। धीरे धीरे कहा 'किसी ने रात्रि को लौटते समय मुझे घायल कर दिया।' फिर टूटे फूटे शब्दों में, पता नहीं, क्या क्या कहता रहा पर सबका अर्थ यही था कि यह जमींदार का काम है। संध्या तक उसने दम तोड़ दिया।

एक सर्दीली काली रात को मैंने हृदय पर पत्थर रखकर अपने ही घर से अपने सर्वस्व पहाड़ी का शव निकलते देखा। सुंदर और घने परोंवाली चिड़िया सोए सोए किसी स्वप्न से जागकर चिल्लाई 'पहाड़ी पहाड़ी।' हर एक चट्टान को काँपती हुई ध्वनि गूँज उठी 'पहाड़ी पहाड़ी।'

पहाड़ी चला गया पर छोड़ गया मेरे भग्न हृदय पर अपने प्रिय जीवन की छाप। बादल भी छाए और पहाड़ी की स्मृति में रोकर चले गए पर मैं तो अपमान की ज्वाला में जलने लगी। कानों में पहाड़ी के अंतिम शब्द गूँजने लगे 'प्रतिशोध—झरना, प्रतिशोध!'

× × × ×

मैं काम पर जाने लगी। जमींदार को देखकर कटाक्ष करती, हँसती तथा इठलाकर उससे कहती "अच्छा ही हुआ, पहाड़ी रास्ते से हट गया।" प्रबल जमींदार नारी के नयन-बाण से घायल होकर मेरी ओर खुश होकर देखता।

मेरा जाल जमींदार के जाल की अपेक्षा अधिक कटीला था।

वह भी एक धधकती हुई संध्या थी। "कितना सुंदर फूल है"—घूमते घूमते रुककर मैंने एक फूल की ओर इशारा किया। मंत्र-मुग्ध हीरासिंह बोला 'तुम्हारे ही लिये है'। इतना कहकर वह एकांत में उसे तोड़ने को झुका। उसी क्षण प्रतिशोध की साक्षात् मूर्ति बनी मैंने लँहगे के भीतर से एक चमचमाता हुआ छुरा निकालकर वार किया। 'यह क्या' कहकर मेरी सुंदर दुनिया उजाड़नेवाले की भी दुनिया उजड़ गई।

घोंसले में जाते हुए पक्षी सहसा चिल्ला उठे। मैं घर लौटी तो देवर ने ताना मारा 'आजकल तो भाभी के दर्शन ही नहीं होते'। सास बोली 'कोई और घर बसाने की फिक्र में होगी।' तिरस्कारों से ऊबकर मैंने ऊपर की ओर देखा। मुझे ऐसा लगा, मेरे सिर पर हाथ रखकर पहाड़ी कह रहा है 'झरना, तू सच्ची पहाड़िन है। तूने मेरी लाज रख ली।'

उस दिन उसकी कोठरी में जाकर, उसकी चीजों को देखकर मैं इतना रोई जितना शायद उसके शव को देखकर

भी न रोई थी। मेरे अश्रु आज बिना बाँध की वेगवती पहाड़ी नदी की तरह बहने लगे, जो आज तक बह रहे हैं अपने पहाड़ी की ही स्मृति में।

जमींदार के खून की चर्चा गाँव में कई महीनों तक होती रही; पर खूनी फरार था।

ख़ूनी

वे दोनों एक दूसरे को प्यार करते थे और उनका प्रेम दिन-प्रति-दिन वेगवती बरसाती नदी की तरह बढ़ता ही जा रहा था। इसी प्रकार वे जीवन के कितने ही वर्ष बिता चुके थे। दोनों एक दूसरे के बिना एक दिन भी नहीं रह सकते थे। दोनों इस समय फोर्थ ईयर के विद्यार्थी थे। बोर्डिङ्ग हाउस का जीवन था। अमन-चैन से समय बिता रहे थे। दोनों के कमरे एक दूसरे के पास थे, पर तब भी एक कमरे में ताला पड़ा रहता था; क्योंकि दोनों एक ही कमरे में रहते थे, एक ही साथ पढ़ते और सोते थे। दोनों को कालेज का हर-एक लड़का और हर-एक लड़की जानती थी। हर-एक प्रोफेसर दोनों को प्यार करता था, खासकर प्रिंसिपल इन दोनों के लिये जान देता था।

रमेश इस समय बाईस साल का सुन्दर युवक था। वह चंचल और लड़ाका था। क्लास का कोई भी ऐसा लड़का न था जिससे उसकी लड़ाई न हुई हो। लड़ाई-झगड़े और हर प्रकार के खेलों में वह सबसे आगे रहता था।

आज तक रमेश का मस्तक किसी के आगे न झुका था, यहाँ तक कि वह प्रोफेसरों से भी लड़ बैठता था। किंतु वही रमेश दिनकर के सामने जाते ही शांत हो जाता था और उसका मस्तक प्रेम से झुक जाता था।

दिनकर रमेश का उल्टा था। वह शांत, गंभीर तथा विचारशील युवक था। आज तक किसी ने उसे न लड़ते और न किसी खेल में भाग लेते देखा था। पढ़ने में दोनों ही अच्छे और सबके स्नेह-पात्र थे। रमेश और दिनकर एक दूसरे को प्राणों से भी ज्यादा प्यार करते थे। प्रेम ने लड़ाके रमेश और गंभीर दिनकर दोनों पर विजय प्राप्त कर ली थी। एक दिनकर था जिसकी तेज आवाज भी किसी ने न सुनी थी और दूसरा रमेश था जिसके शोर-गुल से सारा बोर्डिङ्ग हिलता था।

खेलों में विजयी होकर रमेश जिस समय प्रसन्नता-पूर्वक अपनी दृष्टि उठाकर चारों ओर देखता, उस समय सबसे प्रथम उसकी दृष्टि दिनकर पर पड़ती। दिनकर के चेहरे पर गर्व की एक रेखा सी खिंच जाती। लड़के एक दूसरे को इशारा करते। दिनकर के नम्बर जब क्लास में सबसे ज्यादा आते तब रमेश गर्व से उठकर कहता "इसे हम लोगों ने खूब पढ़ा था।" इस पर लड़के हँसकर कहते "तभी तो तुम फेल हो! नम्बर तो दिनकर के आए हैं और ऐंठ आप रहे हैं।" उस समय रमेश क्रोध से उद्विग्न हो उठता और

लड़ना शुरू कर देता था। ऐसे अवसर पर केवल दिनकर ही उसे शान्त कर सकता था। लड़के ताना मारते हुए कहते—ठीक है, एक ही बात है।

रमेश को कभी किसी ने पढ़ते न देखा था। इम्तहान के दिनों में जब दिनकर उसे डाँटकर पढ़ने को कहता तब वह दिनकर से भी लड़ बैठता था। बात तो यह थी कि वह एक जगह टिककर अधिक देर तक बैठ ही नहीं सकता था। वह अपना अधिक समय घूमने में बिताता था। लोगों के भेदों का पता लगाने में वह बड़ा कुशल था। जब वह कालेज के लड़कों और प्रोफेसरों के भेदों का पता लगाकर दिनकर को सुनाता, उस समय कभी कभी दिनकर भी उसे डाँट देता था, "लड़ाके, तुम्हें भेदों के सिवाय कुछ सूझता ही नहीं है!" इतना कहते कहते दिनकर के चेहरे पर बड़प्पन के भाव आ जाते। इस प्रकार वे दोनों लड़-झगड़ कर भी एक थे। जब कभी चंचल रमेश को समझाते समझाते दिनकर की आँखें अश्रु-पूर्ण हो जातीं, तब रमेश व्याकुल हो उठता और बच्चों की तरह अपने रूठे देवता को मनाता।

प्रेम की डोर मजबूत थी। उसे तोड़ने का साहस किसी में भी न था।

× × × ×

धीरे धीरे उनके सुनहरे जीवन में रजनी ने प्रवेश किया। बड़े भारी लेक्चर की तैयारी हो रही थी, सारा 'हाल' भरा था। अन्य अन्य कालेजों के लड़कों और लड़कियों की भी प्रतियोगिता थी। सब कालेजों के प्रोफेसर वगैरह भी आए थे। अन्य कई लड़कों के बाद रमेश का नाम आया। रमेश के बोलने में आकर्षण था, उसकी आवाज तेज थी, उसके समझाने में इतनी योग्यता थी कि लोग सहसा उत्तेजित हो उठते थे। लोगों को पूर्ण विश्वास था कि सदा विजयी होनेवाला रमेश अब भी विजयी होगा। लोगों ने यह स्वप्न में भी न सोचा था कि कोई उसके तर्क काट सकेगा। रमेश का लेक्चर समाप्त हुआ, "वाह-वाह" की ध्वनि के साथ लोगों ने प्रसन्नता प्रकट की। कालेज के प्रोफेसरों का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा और सबसे प्रथम रमेश का स्वागत करने और उसे बधाई देने के लिये खड़ा था गर्वीला दिनकर जिसकी आँखें इस समय प्रसन्नता से चमक रही थीं।

लोग चौंके! धीरे धीरे उषा के समान देवी सी वह स्टेज पर रमेश की प्रतिद्वंद्विनी के रूप में आई। बड़ी ही सरलता के साथ हँसते हुए उसने लोगों का अभिवादन किया और फिर सँभलकर धीरे धीरे, एक एक करके, रमेश की बातों को काटना शुरू किया। सारे 'हाल' में शांति छा गई, मानों लोगों की चेतना लुप्त हो गई हो। उसकी वक्तृता का

एक एक शब्द बड़ी सफाई से निकलकर तीर के समान लोगों के हृदय में चुभता जा रहा था। रमेश चौंका, उसके सारे तर्क कट रहे थे। दिनकर ने इसको लक्ष्य किया और फिर उसने झुककर उसके कानों में कहा, "रमेश, जानते हो यह कौन है? यह प्रिंसिपल की लड़की रजनी है। सेकेंड ईयर में पढ़ती है।" रजनी के बोलने में इतना आकर्षण था, उसमें इतनी सरलता और सौंदर्य था कि रमेश उसके प्रति द्वेष के भाव न रख सका। रमेश और दिनकर दोनों मंत्र-मुग्ध थे।

रजनी स्टेज से उतरी। उसकी वक्तृता समाप्त हो चुकी थी। रमेश भी आगे बढ़ा। उसे गर्व था कि आज लेक्चर में उसकी बातों को काटनेवाली कोई प्रकट हुई है। उसने हँसते हुए कहा "मैं अपनी प्रतिद्वंद्विनी मिस रजनी को हार्दिक बधाई देता हूँ।" नीची दृष्टि किए हुए मुस्कराती हुई रजनी ने उत्तर दिया "मुझे भी अपने प्रतिद्वंद्वी को बधाई देने का पूर्ण अधिकार है। आज मेरा सौभाग्य है कि आप लोगों से मिल सकी जिनकी पिताजी सदैव तारीफ किया करते हैं।" इतना कहती हुई रजनी अपनी सहेलियों में चली गई।

इधर-उधर की बात-चीत करते हुए रमेश और दिनकर अपने अपने कमरों में लौटे। दोनों ने एक दूसरे को लक्ष्य किया। दिनकर ने देखा—चंचल रमेश कुछ शांत सा हो

गया है और रमेश ने लक्ष्य किया—गंभीर दिनकर कुछ प्रसन्न सा रहने लगा है। किसी भावी आशंका से दोनों चौंक उठे।

× × × ×

दिनकर और रमेश दोनों की छुट्टी का समय अब अधिकतर प्रिंसिपल के ही यहाँ बीतता था। प्रिंसिपल भी उन दोनों को बहुत अधिक प्यार करता था। उसके प्यार में एक अभिलाषा छिपी हुई थी जो अंदर ही अंदर पल रही थी। उसकी किसी को जरा भी खबर न थी। वह रमेश या दिनकर इन दोनों में से किसी की शादी रजनी के साथ कर देना चाहता था।

छिपे छिपे रजनी इन दोनों मित्रों के प्रेम में अपना हिस्सा बँटा रही थी। रमेश और दिनकर दोनों रजनी को समान भाव से प्यार करते थे और रजनी भी दोनों को उसी तरह प्यार करती थी। तीनों मिलकर इधर-उधर की अपनी अपनी घटनाएँ सुनाते। वे घटनाएँ क्या होती थीं—रमेश और दिनकर के प्रेम की मंजिलें। रजनी हँसकर कहती, "क्या तुम दोनों एक दूसरे को इतना प्यार करते हो?" इस पर हँसकर चंचल रमेश कहता "देखना रजनी, हम दोनों की शादी एक ही लड़की से और एक ही साथ होगी।" जोर जोर से हँसती हुई रजनी कहती "तो क्या दिनकर की बीबी तुम्हारी बीबी और तुम्हारी बीबी दिनकर की बीबी होगी? भला यह तो बताओ, तुम दोनों में से उसे कौन

ज्यादा प्यार करेगा।" इस पर गंभीर दिनकर कहता—हम दोनों उसे बराबर ही प्यार करेंगे।

भाग्य भविष्य के आवरण में छिपा था।

× × × ×

इसी प्रकार कितने ही महीने बीत गए। लोगों ने धीरे से एक दूसरे के कान में कहा, "प्रिंसिपल रजनी की शादी दिनकर या रमेश के साथ करना चाहता है।" लोग उत्सुक थे—देखो रजनी की शादी किससे होती है। प्रिंसिपल भी चिंतित रहता कि किससे करूँ और किससे न करूँ। उसके कानों में यही शब्द गूँजते "दिनकर और रमेश—रमेश और दिनकर।"

× × × ×

"दिनकर, क्या सो रहे हो?"—ऐसा कहते कहते शोर मचाते हुए रमेश ने कमरे में प्रवेश किया—"बड़ी अच्छी खुशखबरी लाया हूँ।" दिनकर चौंका। उस विचारशील ने सोच लिया—क्या खुशखबरी लाया है। वही, जिसे उसने अच्छी तरह सुन लिया है, जिस खुशखबरी ने उसका दिमाग खराब कर दिया है, जिसने हृदय की सारी शांति मिटा दी है, जिसने दिल में एक दर्द सा पैदा कर दिया है, जिसने हाथों को कँपा दिया है—और आँखों को पथरा दिया है और जिसने अनंत उन्मादिनी मदिरा पिला दी है। वह

हाँ वही खुशखबरी क्या रमेश उसे अपने मुँह से सुनाने आया है ? घबड़ाकर दिनकर बोला "नहीं, सोया नहीं हूँ।" "तो क्या रजनी के विषय में सोच रहे हो ?" कहने को तो रमेश कह गया पर जब उसने अपनी दृष्टि विचारशील दिनकर के चेहरे पर डाली जो किसी चिंता से पीला हो रहा था, तब वह काँप उठा। यह वही चेहरा है जिसे देखे बिना उसे एक पल भी चैन नहीं, यह वही मित्र है जिसके सिर में हलका सा भी दर्द होने पर उसके सिर में दूना दर्द होने लगता था और वह भी कालेज से छुट्टी लेकर उसी के साथ पड़ रहता था। उसने उसके सिर पर हाथ रक्खा। रमेश को व्याकुल देखकर दिनकर हँसा "अरे भाई, मैं तो भला-चंगा हूँ। कहो तो सही, क्या खुशखबरी लाए हो ?" रमेश अपने मित्र की तबियत अच्छी जानकर प्रसन्नता-पूर्वक कहता गया "प्रिंसिपल रजनी की शादी मेरे या तुम्हारे साथ करना चाहते हैं। अब तो तुम मिठाई खिलाओ और मैं आज ही प्रिंसिपल से कह आऊँगा कि हम दोनों की शादी एक ही से एक ही जगह होगी ताकि हम दोनों मित्र एक घंटे के लिये भी एक दूसरे से अलग न हो सकें। और रजनी को भी बधाई दे आऊँगा कि तुम हम दोनों की बीबी बनने-वाली हो।" रमेश की बच्चों की सी बातें सुनकर दिनकर बोला—पागल हुए हो! कहाँ की बात लाए हो। हटाओ इन बातों को।

"आखिर द्रौपदी के भी तो पाँच—" दिनकर ने बीच ही में टोका—"रमेश, जो बात असंभव है उसे कहने से क्या फायदा ?"—इतना कहते कहते दिनकर गंभीर हो गया। बिगड़कर रमेश बोला—चुप रहो दिनकर, बंद करो अपनी फिलासफी। इतनी बड़ी खुशखबरी सुनाने के बाद मैं वही पुरानी शिक्षा-प्रद फिलासफी नहीं सुनना चाहता हूँ, जो तुम दिन-रात हमेशा मेरे कान में भरा करते हो। रजनी की बातों के आगे तुम्हारी शिक्षाएँ बड़ी नीरस प्रतीत होती हैं।

फिर प्रेम की धारा उमड़ी और दोनों मित्र उसमें बह गए। दोनों ने आकाश की ओर देखा—तारे बिखरे थे। धीरे-धीरे दोनों मित्र अपनी अपनी खाट पर ढुलक पड़े।

× × × ×

दोनों प्रेमियों के बीच में चिनगारी की तरह एक संशय उत्पन्न हुआ जो दिनोंदिन सुलगता गया। वही दिनकर और वही रमेश थे और वही प्रेम था पर अब दोनों एक दूसरे से डरते थे, दोनों एक दूसरे से प्रेम की बात करते करते चौंक उठते थे, इतना प्रेम होते हुए भी दोनों एक दूसरे की ओर देखते घबड़ाते थे। दिनकर और रमेश दोनों सोचा करते। दिनकर सोचता "रमेश को क्या हो गया है !" और रमेश सोचता "दिनकर को क्या हो गया है !" दोनों के हृदय में यह परिवर्तन काँटों की तरह चुभता था।

दोनों साथ साथ रजनी के घर जाते, पर अनमने और भूले से। दोनों ही रजनी की ओर संशय की दृष्टि से देखते। रजनी जब रमेश से बात करती तो दिनकर चुप हो जाता और जब वह दिनकर से बात करती तो रमेश चौंकता। दोनों की ऐसी हालत देखकर रजनी सोचती कि दोनों को क्या हो गया है।

तीनों भीतर ही भीतर जलते थे।

× × × ×

"एक हफ्ते के भीतर ही भीतर रजनी का सगुन चढ़ेगा। दिनकर या रमेश के साथ इसका निर्णय होना जरूरी था।"— यह बात दिनकर और रमेश दोनों ने सुनो। पर दोनों शांत थे, मानो कुछ सुना ही न हो। दोनों बात करते पर बीच में रजनी की बात आते ही दोनों उसे काट जाते।

रात को बातें करते करते दोनों एक ही साथ सो गए। पता नहीं किस बात से घबड़ा कर दिनकर उठा। उसने पास ही सोए हुए रमेश पर दृष्टि डाली। आज रमेश उसे बड़ा भोला और सुंदर लगा। धीरे धीरे न जाने किन विचारों में लीन वह सो गया। इसी बोच मे रमेश चौंककर अथवा किसी स्वप्न से जागकर उठा। उसने बगल में सोए हुए दिनकर के चेहरे पर दृष्टि डाली जो आज सारे ब्रह्मांड का सौंदर्य लिए प्रसन्नतापूर्वक सो रहा था। धीरे धोरे इन्हीं विचारों में लीन वह भी सो गया।

शायद दोनों ही सोच रहे थे "रजनी किसकी होती है।" आज का तीसरा दिन निर्णय का अंतिम 'दिन है।

× × × ×

दिनकर का रजनी के प्रति उसके भावों ही के समान गंभीर प्रेम था। बिना रमेश और रजनी के उसे अपने विचारों के महल गिरते से जान पड़े। उसे दोनों में से एक मिलता था—रमेश या रजनी। वह दोनों ही को प्यार करता था। उसके लिये कठिन समस्या थी कि वह रमेश को ले या रजनी को। उसकी आँखों के आगे भविष्य घूम गया—रमेश और रजनी का विवाह हो रहा है और वह दोनों को खोकर टूटे दिल से अपने घर को लौट रहा है। दिनकर उन्मादी सा हो गया—आँखों के आगे बार बार हँसते हुए रमेश और रजनी आते थे और कानों में दो शब्द गूँज रहे थे—रमेश और रजनी—रजनी और रमेश। वह पागलों की तरह उठा—पिस्तौल उसके हाथ में थी। धीरे धीरे चोर की तरह वह रमेश के कमरे में घुसा। रात और भी लंबी और भयानक हो गई। चंचल चाँदनी में रमेश बड़ा सुंदर लग रहा था। थोड़ी देर तक दिनकर एकटक उसके चेहरे की ओर देखता रहा, जो पता नहीं क्यों किस खुशखबरी की मीठी याद में बार बार मुस्करा उठता था, उसके लंबे लंबे घुँघराले बाल उसके चेहरे पर अठखेलियाँ कर रहे थे। धीरे से उन्हें हटाकर उसने अपने प्यारे मित्र के चेहरे पर प्रेम का एक अंतिम चिह्न अंकित कर दिया। फिर पिस्तौल दगी। सारा बोर्डिंग गूँज उठा। लोग दौड़े—"खून खून!" उधर

दिनकर बेहोशी की नींद में बिस्तरे पर पड़ा था। प्रोफेसर लोग, प्रिंसिपल सब दौड़े; सबका हृदय काँप उठा और आँखों से आँसुओं की अविरल वृष्टि होने लगी।

दिनकर रमेश का शव गोद में लिए रो रहा था। उसके कानों में शब्द गूँज रहे थे "अब रजनी तुम्हारी है।" उसने घृणा से मुँह मोड़ लिया और कानों पर हाथ रख लिया। इसी बीच में "रमेश—रमेश" चिल्लाती हुई पगली की तरह रजनी दौड़ी आई। उसके बाल बिखरे थे, आँखें लाल थीं। रमेश के शव को पकड़कर वह रो रही थी—"रमेश बोलो—रमेश बोलो। तुम्हें क्या हो गया?" दिनकर काँप उठा। पश्चात्ताप से उसका शरीर जलने लगा। लोगों ने रजनी को जबरदस्ती हटाया। उधर कमरे में बंद रो रहा था दिनकर। सारा कालेज रुदन से गूँज उठा। सब रो रहे थे—रमेश के लिये नहीं, जिंदा दिनकर के लिये कि वह रमेश के बिना जिएगा कैसे!

इसी प्रकार दो महीने बीत गए। दिनकर उन्मादी हो गया था। इस बीच में उसे न कभी किसी ने बात करते देखा और न हँसते देखा। दिनकर दिन भर कमरे में बैठा रहता। जब रात होती तो "रमेश—रमेश" करके जोर से पुकारता। लोगों ने राय दी कि शायद रजनी के साथ शादी होने पर वह रमेश को कुछ कुछ भूल सकेगा। प्रिंसिपल ने सोचा "यह संभव है।"

× × × ×

आज शादी की रात थी। उन्मादी दिनकर की चेतना लौटी। वह अपनी अनंत बेहोशी से जागा। वह चौंका "हैं! मेरी शादी? रमेश कहाँ है? रमेश! रमेश!!" रजनी ने यह दशा देखकर उसे रोका। पर उसने रजनी की ओर दृष्टिपात भी न किया। उसके आगे एक एक कर वे घड़ियाँ आने लगीं जब कि केवल वह और रमेश थे।

दिनकर को उन्माद की जगह पागलपन ने आ घेरा। वह दौड़ा—हाथ में पिस्तौल थी। उसी दिन की तरह रात और भी भयानक हो उठी। वह घर से बाहर की ओर दौड़ा। रजनी भी उसके पीछे पीछे दौड़ रही थी— 'दिनकर, रुको—रुको!" पर वहाँ उसकी सुननेवाला कौन था।

"एक—दो—तीन" फायर हुए और उसके साथ ही दिनकर का सुंदर शरीर पृथ्वी पर लोटने लगा। सारी पृथ्वी गूँज उठी। उसके अंतिम शब्द थे, "रमेश रुको—मैं आया—रजनी मुझे क्षमा करना—मैं खूनी हूँ—मैंने खून किया है—रमेश का खून किया, अपना खून किया और साथ में तुम्हारे दिल का खून किया—रजनी! रमेश!!" सब शांत था।

अश्रु-पूर्ण नयनों से लोगों ने देखा—उन्मादिनी रजनी उँगलियों पर गिन रही थी, "मैं खूनी हूँ—मैंने खून किया है—रमेश का, अपना और रजनी के दिल का!!!"

तिरस्कृता

प्रकाशवती ने काफी धन लेकर ससुराल में प्रवेश किया पर फिर भी वह अधिक सम्मान न पा सकी और विमल— वह तो प्रथम बार ही में उससे कुछ विरक्त सा हो गया था। इसी प्रकार कुछ महीने बीत गए। ज्यों ज्यों प्रकाश उसके निकट जाने की कोशिश करने लगी त्यों-त्यों विमल उससे दूर खिँचता गया। अमीरी और ऐशों के बीच में पला हुआ विमल अपनी साँवली और साधारण पढ़ी-लिखी पत्नी को पाकर कुछ दु:खित सा हो गया। उसने तो अपनी पत्नी की कल्पना बड़ी ही सुंदर की थी। धीरे धीरे उन दोनों के बीच में एक ऐसी ऊँची दीवाल आकर खड़ी हो गई जिसे दोनों में से कोई भी न फाँद सका।

धनी, भाग्यशाली और होनहार विमल इँग्लेंड पढ़ने चला गया। अंतिम बार उसने एक फूलों का गजरा अपनी तिरस्कृता पत्नी की ओर फेंका। उसने उसे रोक लिया और मुँह मोड़कर आँसू पोंछ लिए।

दो वर्ष बीत गए। विमल ने प्रकाश को एक भी पत्र न लिखा। किसी ने प्रकाश को अभागी कहा और किसी

किसी ने यहाँ तक कह डाला कि जनमते ही ऐसी लड़की क्यों न मर गई!

माँ-बाप ने सोचा—बेचारी को पढ़ा दो—मन लगा रहेगा।

× × × ×

कितने ही वर्ष बीत गए, प्रकाश अब वह प्रकाश न रही। पढ़ी-लिखी फुर्तीली युवती की एक प्रसिद्ध क्रांतिकारिणी महिला से घनिष्ठता हुई और फिर वह भी दुनिया से अपने दुःखों का बदला लेने के लिये क्रांतिकारी दल में शामिल होकर मरने-मारने को तैयार हो गई।

दुनिया ने उसके भागने की खबर सुनी और उसे कलंकिनी कहा। पड़ोस की स्त्रियों ने माँ को जाकर सांत्वना दी "प्रकाशो के लक्षण हो ऐसे थे।" माँ ने रोकर कहा "ऐसी लड़की के पेट में आते ही मैं क्यों न मर गई?" ससुरालवाले खुश होकर बोले—"बहू थी ही कुलक्षणी।" इस प्रकार प्रकाश की जीवन-धारा ही बदल गई।

× × × ×

सेठ धनपतराय को लेकर क्रांतिकारी दल में बड़ा विवाद उठा। अंत में यह कार्य प्रकाश पर छोड़ा गया। होशियार प्रकाश ने भेस बदला—सेठ की शुभचिंतक बनी और फिर उसका खून करके लौट आई। यह उसकी योग्यता का प्रथम प्रमाण था। दलवाले उसकी योग्यता और फुर्तीलेपन पर रीझ गए पर प्रकाश खुश न हो सकी। उसकी आँखों

के आगे सेठ का शव घूमा करता और अँधेरे में से काली अस्पष्ट छायाएँ उसे "हत्यारी" कहकर चिढ़ाया करतीं। वह अपने इस जीवन से ऊब उठी। उसे पिछले वर्षों की बातें याद आतीं। उसका सारा क्रोध विमल पर आकर इकट्ठा हो जाता, उसकी मुट्ठियाँ बँध जातीं, वह दाँत पीसकर कहती—"विमल, तुम्हारे कारण ही मेरी यह हालत हुई। मैं हत्यारी बनी, निर्लज्ज बनी केवल तुम्हारे ही कारण। अगर तुमने मेरा तिरस्कार न किया होता तो स्वप्न में भी मैंने घर से बाहर कदम न निकाला होता—मेरी अशांति के कारण!" वह पिस्तौल उठा लेती, उसके मुँह से निकलता—"बदला—बदला लूँगी।"

प्रकाश एक ऐसी खाई में आकर गिर पड़ी जिससे जीवन-पर्यंत वह निकल भी नहीं सकती थी। केवल खूनी—हत्यारे ही उसके मित्र थे। वह आँखें बंद करके कल्पना करती—इँग्लेंड में विमल ऐश उड़ा रहा होगा। संभव है, अपनी शादी की बात भी भूल गया होगा। वह अस्पष्ट भाषा में कहती—विमल, तुम्हें दिखा दूँगी कि एक तिरस्कृता स्त्री क्या-क्या कर सकती है!

× × × ×

प्रकाश ने सुना कि विमल बड़ा अफसर होकर अपनी अँगरेज पत्नी के साथ भारत लौट आया है। एकाएक उसे विश्वास न हुआ। वह भेस बदलकर निकली। देखा, उसका

विमल एक अँगरेज महिला के साथ। वह जल उठी, उसकी आँखों के सामने ही एक अन्य स्त्री के साथ! प्रतिशोध की अग्नि भभक उठी "अच्छा विमल, दिखा दूँगी।" वह लौट आई।

कई महीने बीत गए। पुलिस के अत्याचार बढ़ते गए और अँगरेजों का पक्षपाती अफसर विमल, क्रान्तिकारी दल की आँखों में खटकने लगा। इसी बीच में कई क्रांतिकारी पकड़कर फाँसी पर चढ़ा दिए गए। अब दल की क्रोधाग्नि अपनी चरम सीमा पर थी।

चिंतित प्रकाश बैठी हुई थी—विचारों में सोई हुई। इसी बीच में नेता ने उसके कंधे पर हाथ रक्खा और उसे अपने साथ आने का आदेश दिया। गुप्त सभा हुई—नाम निकाला गया। अंत में प्रधान ने उठकर पिस्तौल प्रकाश के हाथ में देनी चाही। प्रकाश की आँखें बड़ी भयानकता से खुल गईं, मुँह से ध्वनि निकल पड़ी "विमल—विमल।" उसने सब कुछ कहना चाहा पर कुछ भी न कह सकी और कहने से कुछ फायदा भी न था। अपने प्राण देकर भी वह विमल की प्राण-रक्षा नहीं कर सकती थी। वह स्वयं प्रतिशोध लेना चाहती थी पर इतना भीषण प्रतिशोध नहीं। वह विमल को एक सबक देना चाहती थी पर मृत्यु का नहीं। प्रधान ने तेज स्वर से पुकारा "प्रकाश।" उसे अपने प्राणों का मोह हो आया। वह उठी, पिस्तौल हाथ में ले ली और उठकर चल दी—दल को उसके कार्यों पर विश्वास था।

× × × ×

वह अफसर विमल के पीछे छाया की तरह घूमने लगी। एक सुंदर रात्रि को विमल, अपनी प्रेमिका के साथ, घूमने निकला। दोनों अकेले थे—सुंदर स्मृतियों में बहे जा रहे थे। इसी बीच में दो फायर हुए। अँगरेज-युवती के कलेजे को पार करके गोली निकल गई, वह वहीं ढुलक पड़ी। दूसरी गोली विमल के कंधे को जरा सा छीलती हुई दूर जा पड़ी। प्रकाश सामने आई और खूब जोर से हँसी—"विमल, एक तिरस्कृता क्या क्या कर सकती है, देख लिया?" विमल ने आश्चर्य-चकित होकर सुना, प्रकाश कह रही थी—"मैं हत्यारी बनी केवल तुम्हारे ही कारण। तुमने मेरी दुनिया उजाड़ दी, मैंने तुम्हारी उजाड़ दी।" वह फिर बैठ गई और विमल की उँगलियों को अंतिम बार स्पर्श किया। रूमाल फाड़कर कंधों पर पट्टी बाँधी—"संभव है, तुम बच जाओ—चोट बहुत साधारण है। विमल, फिर भी मैं तुम्हें चाहती हूँ। मैं तुम्हारी हत्या नहीं करना चाहती थी। तभी तो छाती पर न लगकर गोली कंधे को जरा सा छीलती हुई निकल गई।" उसने हँसना चाहा—"मैंने तुम्हारा इतना पक्षपात किया—शायद मेरे दल का कोई भी आदमी इतना न करता।"—विमल ने कुछ कहना चाहा पर झट से प्रकाश ने कोई वस्तु उसे सुँघा दी। वह बेहोश होकर ढुलक पड़ा और प्रकाश न जाने किधर चल दी।

× × × ×

दलवाले बड़ी उत्सुकता से इंतजार कर रहे थे पर प्रकाश लौटकर न पहुँची। सारे शहर में शोर मचा हुआ था—"अफसर विमल और उनकी अँगरेज महिला पर गोली चली—मिसेज फौरन मर गई, मि० विमल बाल बाल बच गए। खूनी लापता हो गया और उसे पकड़नेवाले को दस हजार रुपया इनाम।"

इस खबर के साथ ही साथ अखबार के दूसरे पेज पर एक खबर और छपी थी—

"एक युवती की लावारिस लाश गंगा की गोद में बहती मिली है—उत्सुकता-वश उस लाश की जाँच मि० विमल स्वयं करेंगे"।

× × × ×

उधर विमल कमरे में युवती की लाश के पास अकेले बैठे रो रहे थे। विमल को ऐसा लगा कि पत्नी की लाश कह रही है—"तुम्हारे ही कारण, विमल।" वह डरकर कमरे से बाहर निकल आए। उस समय वह पसीने से तर थे और गुनगुना रहे थे "सचमुच, मेरे ही कारण?" रोते हुए मि० विमल ने जब उस लाश को कंधा दिया तब तमाशा देखने-वाली दुनिया कह रही थी—शायद यह इनकी तिरस्कृता पत्नी की लाश है।

राखी

चारों ओर डाकू नाहरसिंह के नाम का आतंक छाया हुआ था। प्रत्येक प्राणी उसके नाम से काँपता था और जितने प्राणी थे उतने ही प्रकार के खयाल लोगों के नाहर के विषय में थे। कोई उसे बूढ़ा बतलाता, कोई जवान, कोई कठोर, कोई करुण। पर सच्ची बात तो यह थी कि आज तक उसे प्रत्यक्ष किसी ने देखा ही न था।

नाहर असाधारण डाकू होते हुए भी पिशाच न था। आज तक उसके हाथ से बहुत कम खून हुए थे। किंतु अवसर आने पर वह खून करने से घबराता भी न था। वह एक कुशल डाकू-सरदार था। साधारण डाके डालना उसका काम न था। वह अपना चमत्कारी हाथ बड़ी बड़ी खतरनाक जगहों में डालता था। करोड़ों की संपत्ति उड़ा लेना उसके लिये कोई बड़ी बात न थी। लोगों का कहना था कि जितने बड़े बड़े खून और डाके होते हैं, सब से नाहर का संबंध रहता है। पर आज तक कोई भी नाहर को पकड़ने में सफल न हो सका था। यहाँ तक कि कोई उसकी छाया तक न देख सकता था। राज्य के कोने कोने में नोटिस

लगे थे।—"नाहर को पकड़नेवाला राज्य की ओर से संतुष्ट और मालामाल कर दिया जायगा"। पर इतना प्रबंध होने पर भी कोई नाहर का पता न लगा सका। अखबारवाले नाहर की खबरों से अखबारों को रँग डालते थे; पर उसकी खबरों का अंत न था।

× × × ×

धीरे धीरे पूर्णिमा के चंद्र की तरह राजकुमारी रेखा और उसकी सुंदरता बढ़ती गई। चारों ओर राजकुमारी के सौंदर्य और शील की सुरभि फैल रही थी। राजा, रानी तथा सारी प्रजा उस पर जान देती थी। रेखा एकलौती बेटी थी, प्राणों से प्यारी और लाड़ली। महाराज के एक लड़का भी हुआ था, पर अब उसकी स्मृति स्वप्नवत् हो गई थी। वह बालक छः या सात महीने का था तभी मर गया था। परंतु कुछ लोगों का कहना था कि वह मरा नहीं वरन् छुटपन ही में एकाएक एक रात्रि को गायब हो गया था, जिसका—बहुत खोज करने पर भी—कुछ पता न लगा। रेखा को राजकुमारों से बढ़कर शिक्षा दी गई थी।

राजा रानी दोनों रेखा की ओर से शंकित रहते थे। राजा के शून्य हृदय में बार बार प्रतिध्वनि होती, "कहीं नाहर रेखा का कुछ अनिष्ट न कर बैठे; वही मेरे सम्पूर्ण राज्य की एकमात्र अधिकारिणी है।" इतना सोचते सोचते महाराज कभी कभी बेचैन से हो उठते।

महाराज को चिंतायुक्त देखकर चंचल रेखा पूछती, "पिताजी, नाहर कैसा होगा?" फिर वह पिता को लक्ष्य कर स्वयं ही अपने प्रश्न का उत्तर देती, "हाँ, खूब भयानक और लंबा चौड़ा होगा, तभी तो ऐसे ऐसे काम करता है।" फिर वह कहती, "मैं नाहर को देखना चाहती हूँ।" पिता शीघ्रता से घबड़ाकर कहता, "रेखा, उसको देखने का नाम भी न लेना। ईश्वर करे, वह जन्म भर तुम्हारी छाया तक न देखे।" राजकुमारी कहती जाती—मानों उसने कुछ सुना ही न हो, "महाराज, मैं उसकी वीरता की तारीफ करती हूँ। अगर मैं उसको एक बार भी देख पाऊँ—" "चुप चुप रेखा!" महाराज उसे रोकते। पर वह सब कुछ अनसुना कर कहती जाती, "जिसके नाम ने ही प्रत्येक प्राणी को कँपा दिया है उसी को—उसी अपरिचित को, रेखा प्रेम की दृष्टि से देखती है।" फिर कमरे से बाहर जाती जाती पुन: एक बार रुककर कहती, "पिताजी, अगर मेरे एक भाई होता तो मैं दिन-रात उसके कान में इन शब्दों को भरती, 'नाहर की तरह होना, नाहर की तरह लोगों को कँपा देना'।" राजा-रानी चौंकते—"रेखा"। परंतु चंचल रेखा रोकर कहती "मेरे कोई भी भाई नहीं है, नहीं तो मैं राखी बाँधकर कहती, 'भैया, नाहर की तरह वीर होना'।" इतना कहते कहते सिसकियाँ भरती हुई राजकुमारी भाग जाती।

× × × ×

जल्दी जल्दी कदम बढ़ाता हुआ एक सुन्दर फैशनेबुल युवक थोड़ी देर के लिये रुका। कौन कह सकता है कि उस समय उसके क्या भाव थे और वह क्या सोच रहा था। उसकी सिगार थोड़ी देर के लिये उसकी पतली पतली उँगलियों में विश्राम करने लगी और उसके विशाल ललाट पर कुछ सिकुड़न पड़ गई। उसने कुछ लोगों को कहते सुना कि आज राजकुमारी रेखा यह सोचकर बहुत रो रही है कि वह किसको राखी बाँधेगी। नाहर चौंक उठा। उसे याद आया, आज रक्षा-बंधन है। लोग कहते जा रहे थे—"अगर महाराज का लड़का जीता होता तो राजकुमारी कितनी खुश होती!" नाहर हँसा—"हः ठीक है। तुम्हारी राजकुमारी को भी उसके भाई के पास पहुँचा दूँगा।" फिर पता नहीं, किन कल्पनाओं में लीन वह आगे बढ़ा। सब लोग प्रसन्न थे। सहसा नाहर की दृष्टि लोगों की कलाइयों पर पड़ी, जिन पर रक्षा-बंधन सुशोभित थे। उसने सुना, राजकुमारी की सखियाँ कह रही थीं—"अगर रेखा के एक भी भाई होता!" नाहर ने दृष्टि उठाकर अपनी कलाई की ओर देखा। उस सुंदर कलाई में आज भी वही पुरानी घड़ी टिक-टिक के साथ उसके खूनी इतिहास को रट रही थी। चिढ़कर नाहर ने वह घड़ी उतारकर फेंक दी। उसके कठोर हृदय की पथरीली चट्टानों से टकराकर प्रतिध्वनि हुई "अगर मेरे एक बहिन होती!" किंतु डाकू-सरदार के

हृदय में यह भाव अधिक देर तक न टिक सका। उसे इतनी फुर्सत ही नहीं थी कि इस विषय को अधिक देर तक सोचे। उसके आगे तो बहुत बड़ी दुनिया थी जिसमें वह केवल अपने ही को देखता था और जरा सी भी असावधानी होने पर मृत्यु को मुँह खोले खड़े देखता था। उसके आगे जीवन-मरण का प्रश्न चक्कर लगाया करता था। धीरे धीरे उसके चिंताकुल चेहरे पर गर्व और प्रसन्नता भरी मुस्कराहट फैली।

इस समय फैशनेबुल सुंदर युवक को देखकर कौन कह सकता था कि यह नाहर है, वही डाकू सरदार नाहर जिसका नाम सुनकर लोगों के कलेजे दहल जाते हैं।

आकाश में टूटे हुए गजरों के फूलों की तरह तारे बिखरे थे। चंद्रमा अपनी पूर्ण कलाओं से युक्त होकर टकटकी लगाए राजमहल की ओर देख रहा था और बरसा रहा था स्निग्ध सुधा। सारे राज्य में शांति-श्री फैली हुई थी। सभी रजनी की शीतल विश्रामदायिनी गोद में विश्राम कर रहे थे। इसी बीच एक पतली सी छाया राजमहल की ओर धीरे धीरे बढ़ती नजर आई। सारा महल, सारी पृथ्वी, सारी प्रकृति इस अभिनय को देख रही थी—पर मूक होकर। पहरेदार चेतना-हीन होकर अपनी अपनी जगह ढुलक गए थे। वह तलवार तथा पिस्तौल से सुसज्जित सुंदर मूर्ति तारों के मंद प्रकाश में राजकुमारी के महल की ओर बढ़ती नजर

आई। व्याकुल होकर चंद्रमा ने बादलों की ओट में मुँह छिपा लिया। तारकाएँ चिल्लाईं "नाहर! नाहर!!" पर व्यर्थ। कोई सुन न सका। वे चिल्ला रही थीं, सारा महल गूँज रहा था। सारा राज्य प्रतिध्वनित हो रहा था—पर मूक भाषा में।

× × × ×

"भैया! भैया!!"—सोई हुई राजकुमारी स्वप्न में चिल्ला रही थी। खिड़की से झाँकती हुई कलाधर की रोशनी में नाहर का छुरा चमक उठा। "आज रक्षा-बंधन है, अगर मेरे एक भी भाई होता!" नाहर का छुरावाला हाथ राजकुमारी की ओर तेजी से बढ़ रहा था। "तो उससे कहती भैया, नाहर की तरह होना।" नाहर डाकू एक बार इन शब्दों को सुनकर चौंका। प्रतिध्वनि हुई—"नाहर की तरह होना।" वह नाहर जो दुनिया के पचासों वीरों को एक ही वार में गिरा सकता था, आज स्वप्न में बड़बड़ाती हुई नाजुक, सोई हुई निर्बल रेखा की बात सुनकर रुका। इस सोई हुई शक्तिहीन बालिका ने कुछ क्षणों के लिये डाकू सरदार को कर्तव्यविमूढ़ कर दिया। नाहर रुका। उसने सोई हुई राजकुमारी के चेहरे को झुककर ध्यान से देखा। राजकुमारी गुनगुना रही थी—"नाहर, मैं तुम्हारी योग्यता और कौशल की तारीफ करती हूँ। ओफ, अगर मेरे एक भी भाई होता!" नाहर को एक वर्ष पहले की बात याद आई।

वह स्वयं कह रहा था——"मेरे एक बहिन होती !" दूसरे ही क्षण नाहर की चमकती हुई तलवार रेखा के एकदम निकट थी। उसके आगे उसके जीवन-मरण का प्रश्न था, बहन-भाई का नहीं। तलवार रेखा की छाती के निकट पहुँच रही थी। पर इसी बीच में रेखा उठ बैठी। रक्षा-बंधन उसके हाथ में था। उसकी स्वप्न-दशा चल रही थी।

"भैया ! भैया !!" वह आगे बढ़ी। इधर तलवार के साथ कुछ कुछ झुका हुआ था नाहर का हाथ। रेखा ने उठकर राखी उसकी कलाई में बाँध दी। नाहर डाकू जो ऐसी करोड़ों राजकुमारियों को एक ही झटके में गिरा सकता था, आज इन कोमल बढ़े हुए करों का प्रतिरोध न कर सका। वह डाकू-सरदार जो कितनी ही भयंकर से भयंकर समस्याओं को एक ही मिनट में सुलझा देता था, आज इस छोटी-सी समस्या को न सुलझा सका। डाकू के पत्थर-से कठोर हृदय में अचानक एक दबी हुई ममता जाग पड़ी। उसका खून ठंडा पड़ गया, उठा हुआ हाथ झुक गया। वह भूल गया कि यह राजमहल है और यह खड़ी हुई राजकुमारी हैं और वह डाकू-सरदार है। सदा खूनियों और डाकुओं के बीच में रहने के कारण उसका हृदय पत्थर हो गया था। वह प्रेम और ममता जानता ही न था। उसके आगे तो सिर्फ खून और डाके थे। वह आज तक ऐसी परिस्थिति में पड़ा ही न था। वह प्रेम-नगर का रहनेवाला नहीं, वह

तो खूनियों के नगर का निवासी था। आज ममता और प्रेम के इस क्षणिक दृश्य ने उसे पत्थर की मूर्त्ति के समान अचल कर दिया। धीरे धीरे डाकू-सरदार ने आगे बढ़कर स्वप्न में विचरण कर रही राजकुमारी के कमल-सदृश कोमल करों को पकड़ लिया। राजकुमारी की निद्रा टूटी। वह चिल्लाई। नाहर काँपा। उसके आगे दृश्य आया—वह फाँसी के फंदे पर झूल रहा है। रेखा की आवाज सुनकर दूसरे कमरे से महाराज दौड़ पड़े। दूर से ही रोशनी जलाकर उन्होंने देखा—दासियाँ मुर्दों से बाजी लगाए बे-सुध पड़ी हैं। और उन्होंने देखा कि भय-विह्वल रेखा की राखी किसी सुंदर कलाई में बँधी है, यद्यपि उसको सारा मुँह बुर्के से ढँका है। एक सेकंड में डाकू-नाहर के डाके और खून महाराज के अश्रु-पूर्ण नयनों के आगे घूम गए और घूम गया राजकुमारी रेखा का तलवार के वार से घायल मृत शरीर।

नाहर ने पुकारा, "रेखा !" रेखा ने आँखें बंद करते हुए धीरे से कहा "क्या नाहर ?" इतना कहते कहते वह पुन: काँपी। उसने तो डाकू-सरदार की कल्पना बड़ी भयानक सोची थी, पर उसकी कल्पनाओं की जगह खड़ा था एक पतला खूबसूरत पचीस-छब्बीस वर्ष का युवक। वह नाहर जो करोड़ों सैनिकों के सामने लोहे की दीवार भी अपने कौशल से तोड़कर भाग जा सकता था, आज इस एकांत प्रेम की पतली डोर को तोड़कर न जा सका।

कुछ ही देर में चारों ओर यह खबर बिजली की तरह फैल गई कि राजकुमारी के कमरे में डाकू सरदार नाहर बंदी है।

× × × ×

दूसरे दिन राजदरबार लगा। हजारों की भीड़ थी। भला कौन जगत्-प्रसिद्ध डाकू सरदार नाहर को देखना न चाहता था? किंतु जब उन लोगों ने नाहर को देखा तो वे चौंके। लोगों ने एक दूसरे से धीरे धीरे पूछा, "क्या यह सुंदर युवक नाहर है? यह देवप्रतिम उज्ज्वल और शांत युवक नाहर है?" उत्सुक जनता सिंधु की तरह उसे देखने को उमड़ पड़ी। लोगों ने भारी हृदय से देखा, उसकी सुंदर कलाई में रेखा की रखड़ी बँधी है। सब की आँखे अश्रु-पूर्ण थीं। कौन जानता था कि राजकुमारी रेखा इतनी जल्दी एक भाई पाकर उसे खो भी देगी। लोगों की आँखों को विश्वास न था कि नाहर बंदी होने पर भी इतना शांत रह सकेगा। लोग डरते थे, देखो पिंजड़े में बंद भूखा सिंह अभी क्या क्या करता है। नाहर की आँखों से किरणें निकल रही थीं। किसी की भी हिम्मत न थी कि उसकी ओर देखे। राजा मंत्र-मुग्ध था। धीरे धीरे वह हृदय पर हाथ रखकर कह गया। राजाज्ञा पढ़कर सुनाई गई—"प्रसिद्ध डाकू-सरदार को प्राणदंड।"

नाहर की दृष्टि ऊपर उठी। आज ही तो वह किसी का भाई बना है। आज ही पहली बार उसके माथे पर चिंता की शिकन पड़ी।

"एक!" सारा राज्य प्रतिध्वनित हुआ "एक!" "बंदी! मृत्यु से प्रथम किसी चोज की अभिलाषा करते हो?" शांत नाहर मृत्यु की हँसी हँसा—"नहीं।" उसने दृष्टि सामने की ओर की। फाँसी का फदा तैयार था। "रुको!—रुको!" मानो सोया हुआ नाहर जगा हो। आँखें बंद करके उसने किसी बात को याद किया। फिर धीरे धीरे उसने कहा—मेरे पाकेट में एक डायरी है। मेरे सरदार ने कहा था कि मरते वक्त उसे महाराज को भेंट करना, संकट में वह तुम्हारी मददगार है। अपनी मृत्यु-शय्या पर सरदार ने मुझे यही आज्ञा दी थी। अत: डायरी महाराज को मेरी मृत्यु से पहले दी जाय।

सारी प्रजा रोई—डाकू नाहर के लिये नहीं, इस फाँसी पर चढ़ते हुए लाल के लिये। पुन: प्रतिध्वनि हुई, "दो!" लोगों के हृदयों से एक हलकी सी चीख निकलकर शून्य में विलीन हो गई। "दो!" फंदा बंदी के गले में अटका था। इसी बीच में घटना-स्थल पर पगली-सी रेखा दौड़ी आई। "छोड़ दो।—छोड़ दो!! रेखा को मत लूटो। मेरे नाहर भैया को छोड़ दो! तुम्हारी राजकुमारी, भैया के प्राणों की भीख माँगती है।" नाहर ने दृष्टि उठाकर रेखा की ओर देखा जो पगली-

सी प्रलाप कर रही थी। आँखें भय से बंद थीं, पर उसके हाथ नाहर के बंधनों की ओर बढ़ रहे थे। इतने ही में एक रुदन से सारा दरबार प्रतिध्वनित हो उठा। महारानी कह रही थीं—महाराज ! नाहर को छोड़ दीजिए। ओफ ! अगर मेरा पुत्र भी जीता होता तो इतना ही बड़ा होता। अपने छः महीने के पुत्र को खोकर मैं इतनी दुखी हूँ तो सोचिए, इसकी माता की, इतने बड़े पुत्र के खोने पर, क्या दशा होगी।

एकाएक विचित्र परिवर्तन हुआ। महाराज के हाथ से डायरी जमीन पर गिर पड़ी। वे चिल्लाए—रुको—रुको ! मेरे नाहर को छोड़ दो, मेरे पुत्र को छोड़ दो। यह तो मेरा पुत्र प्रताप है।

नाहर कुछ भी न समझ सका। एकाएक महाराज को क्या हो गया ?

डायरी के पहले ही पृष्ठ पर लिखा था "छः महीने के राजकुमार को मैं उठा लाया—केवल द्वेष-वश, क्योंकि राजा डाकुओं का नाश चाहता है और मैं उनकी उन्नति चाहता हूँ।" दूसरा पृष्ठ खोला, "राजकुमार को डाकुओं की तरह शिक्षा दी जाने लगी। नाम रखा नाहर। राजकुमार तथा अन्य लोगों से यह बात छिपाई गई कि वह राजकुमार है।" अंतिम पृष्ठ खोला, "इसके कंधे पर राज-चिह्न मौजूद है, जो राजकुमारी रेखा के भी छः महीने पर अंकित कराया गया है।" नीचे लिखा था "डाकू-सरदार।"

महारानी दौड़ीं—पुत्र प्रताप! मैं जानती थी कि तुम मुझे कभी न कभी अवश्य मिलोगे।

राज-चिह्न मिलाया गया। वही चिह्न था जो राजकुमार के छठे महीने अंकित किया गया था। सारी प्रजा ने हर्ष-ध्वनि की। सहसा महाराज कठोर हो उठे। उन्होंने जोर से कहा—बंदी को मृत्यु के फंदे के पास ले जाओ। मैं प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ, चाहे नाहर मेरा बेटा ही क्यों न हो।

प्रजा चिल्लाई—महाराज, आपको हमारे प्रिय युवराज को प्राणदण्ड देने का कोई अधिकार नहीं।

बूढ़े महाराज ने हँसते हुए राज-मुकुट नाहर को पहना दिया। पुन: प्रजा ने हर्षध्वनि की।

रेखा ने नए सम्राट् की ओर देखा। हर्ष से चिल्लाई "नाहर भैया!" नाहर ने एक बार रेखा की ओर देखा और एक बार अपनी कलाई में बँधी राखी की ओर।

गर्विता

गुलाब मस्त होकर घंटों बड़े आईने के सामने खड़ी होकर गुनगुनाया करती "सुंदर नारी—सुंदर रूप दिखाय—" गाते गाते उसकी आँखों में ज्योति सी छा जाती—अपने रूप पर वह स्वयं मुग्ध हो जाती। गुलाब अगर अपने रूप पर गर्व भी करती थी तो इसमें आश्चर्य ही क्या? वह थी ही ऐसी सुंदरी। लोग उसे विधाता की अपूर्व कृति कहा करते थे। सबसे सुंदर थीं उसकी दो चमकीली पर मादक आँखें जिनमें मदिरा सी ढलती थी। चौड़ी, फैली हुई पलकों के भीतर की काली पुतलियों में—लोहे के लिये चुंबक सा—आकर्षण था और बसा था उसकी आँखों में रूप का नया संसार। अगर गुलाब किसी से सीधे मुँह बात भी नहीं करती थी तो इसमें नई बात क्या थी? ऐसा रूप पाकर हर एक प्राणी गर्व करने का अधिकारी है। लोगों की आँखें भ्रमरों के समान उसके चारों ओर घूमा करती थीं।

गुलाब की माता यशोदा बड़े उत्साह और चाव से अपनी बेटी के निखरते रूप और यौवन की चर्चा अपनी सखियों से

करती। समाज मुँह खोले खड़ा था। "बेटी की शादी तो करनी ही होगी" वह पति से बोली। लापरवाही से हँसकर दीनबंधु बोले—बस, चर्चा भर करने की देर है—हजारों शाहजादों की आँखें गुलाब के कदमों पर बिछ जायँगी।

बड़ी शीघ्रता से गुलाब के विवाह की चर्चा फैली। भला कौन गुलाब को अपने घर की रानी न बनाना चाहता था?

गुलाब के अभिमानी दिल में एक धक्का सा लगा—"मेरी शादी होगी—किसी के अधीन रहना होगा और एक अपरिचित को अपनी सारी इच्छाएँ सौंप देनी होंगी!"

अंत में गुलाब की शादी एक बहुत सुंदर युवक से हुई। वह भी था सुंदरता का पूर्ण उपासक। शेखर ने अपने भाग्य को सराहा "सुंदरी गुलाब मेरी पत्नी है!" उपा-सिका गुलाब भी अपने भाग्य पर इतराई "मेरा पति शेखर सुंदर है!" दोनों ही प्रसन्न थे।

ससुराल में गुलाब साक्षात् लक्ष्मी सी प्रतीत हुई। वह देवी सी पूजी और चित्र सी देखी जाने लगी। शेखर अतृप्त नेत्रों से उसे निहारा करता "कितना रूप है"।

गुलाब जहाँ से निकलती, लोग गाते हुए निकल जाते "तीखी चितवन—चाल निराली, सुंदर नारी।" वह मुस्करा उठती। रूप सर्वत्र विजयी था।

भोली युवती ने स्वप्न में भी न सोचा था कि इस सुंदरता और यौवन के नीचे हड्डियों का एक भयानक और भद्दा ढाँचा छिपा है।

× × × ×

होनी ने डेरा डाला।

एक संध्या को गुलाब का शरीर टूटने लगा, कमजोरी और घबराहट भी बढ़ती ही गई। दूसरे दिन ज्वर भी हो गया। कितने ही डाक्टर रात-दिन बैठे रहे पर कोई कुछ भी न कर सका। तीसरे दिन सारे शरीर में दाने निकल आए। लोगों ने एक दूसरे की ओर देखा "माता महारानी का प्रकोप!" प्रथम वार गुलाब का अभिमानी हृदय रो उठा। सबने कहा कि बड़ी माता हैं। देखो गुलाब बचती भी है या नहीं। उधर रोगिणी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—माता, मेरा रूप नष्ट करके मुझे भी उठा लेना।

नष्ट हो गया गुलाब का सारा सौंदर्य। कोमल शरीर काँटों रूपी दानों से छिद गया। उसकी जिन आँखों में से सुधा बरसती थी, जिन पर गुलाब को सबसे ज्यादा अभिमान था उनमें से एक आँख भी जाती रही। शरीर अच्छा हो रहा पर सौंदर्य नष्ट हो चुका था—आकर्षण की जगह अब भद्दापन था।

यह गुलाब के दिल पर दूसरी चोट थी—अब मैं भद्दी हूँ। मैं अशुभ गिनी जाऊँगी।

एक दिन अपने लुटे हुए सौंदर्य को याद करके वह उन्मादिनी-सी हो गई। दौड़ी हुई वह शीशे के सामने गई पर चौंककर चीख उठी। शीशा उसके हाथ से गिरकर चूर चूर हो गया। आवाज सुनकर शेखर भी आया पर उसने भी पिछले दिनों की तरह झुककर गाया नहीं "सुन्दर नारी..."। गुलाब रोने लगी।

शेखर गुलाब को चाहता था पर उससे ज्यादा उसके रूप को। उसने बीमारी की अवस्था में गुलाब की बड़ी सेवा की पर जब उसने देखा कि वह उसके रूप की रक्षा न कर सकेगा तभी से वह उससे कुछ विरक्त-सा रहने लगा।

शेखर के लिये दुनिया में सौंदर्य की कमी न थी। रूप का जौहरी फिर हीरा परखने चला। वह तो केवल उपासक था।

× × × ×

"शेखर, मैं यह क्या सुन रही हूँ?" गुलाब ने करुण-सी होकर पूछा।

"जो कुछ सुन रही हो वह ठीक है—सच है।" शेखर ने कतराकर निकल जाना चाहा।

गुलाब ने आगे बढ़कर उसके हाथों को बलपूर्वक पकड़ लिया "मुझे ठीक ठीक उत्तर दिए जाओ।" शेखर को शुभ-समय में कानी की यह धृष्टता बहुत बुरी लगी। उसने हाथ छुड़ाकर कहा "लाचार हूँ, संसार में लोगों के सामने अपनी

इज्जत बनाए रखने के लिये एक शिक्षिता और सभ्य सुन्दर स्त्री लाने के लिये मुझ पर जोर डाला गया है" फिर वह मुस्कराकर बोला—पर यह घर तुम्हारा है—तुम्हें कोई रोक-टोक न होगी।

गुलाब अपनी कुरूपता की बात भूल गई। वह बोली "तो क्या मैं असभ्य हूँ—अशिक्षिता हूँ?" उसे क्रोध आ गया।

शेखर ऊबकर बोला—तुम्हारी शिक्षा तुम्हारी सभ्यता सब तुम्हारे रूप ही में छिपी थी—जो उसी के साथ चली भी गई।

गुलाब की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं—"स्वार्थी पुरुष, इतनी क्रूरता?" क्रोध में आकर उसने मेज पर रक्खे शेखर के काम के कागजों को मरोड़कर फेंक दिया।

शेखर मुस्कराया—स्त्रियाँ अपना अभिमान मरकर भी नहीं छोड़तीं—बिच्छू मरते-मरते भी डङ्क मारता ही रहता है।

शेखर का यह ताना सुनकर गुलाब व्यथित हो गई। शेखर शान से चल दिया। वह शून्य आँखों से देखती रही जिस प्रकार घायल हरिणी बहेलिए की ओर देखती है।

× × × ×

कुछ दिन बाद खूब बाजे और शोर-गुल के साथ शेखर एक सुन्दरी का हाथ पकड़कर उसे ब्याह लाया।

सुंदरी ने गुलाब की ओर इशारा करके शेखर से पूछा—"यह कानी कौन है?" गुलाब को क्रोध आ गया। कुचली हुई नागिन की तरह कह उठी—"मैं कौन हूँ?" वह आगे

बढ़ी—"इसी कायर से पूछो कि मैं कौन हूँ—मूर्खा, मैं भी तेरी ही तरह इसी घर में शान से ब्याहकर आई थी।" गुलाब ने क्रोध में आकर उसका सिर दिवाल से टकरा दिया। नववधू डरकर शेखर के निकट खिसक आई। पुनः गुलाब ने तालियों का गुच्छा शेखर के ऊपर फेंका। "लो सँभाल लो," कहकर वह घर से बाहर निकल आई। शेखर के मुँह में ताला लग गया। वह उसे रोकने के लिये एक शब्द भी न कह सका।

'यह गुलाब के दिल पर आखिरी चोट थी जिसने उसका दिल एकदम चूर चूर कर दिया।

× × × ×

महीनों पीछे लोगों ने सुना—गुलाब स्कूल में छोटी लड़कियों को पढ़ाने के लिये ४०) महीने पर अध्यापिका हो गई है।

लोग गुलाब के मुँह पर, उसका परिचय एक दूसरे से इस तरह देते "यह चार वर्ष पहले की एक गर्विता सुंदरी है।" गुलाब की आँखें नीची हो जातीं और हृदय हाहाकार करने लगता। माँ-बाप ने बहुत बुलाया और शेखर के कितने ही पत्र आए पर वह बेकारी और एहसान की रोटियाँ नहीं खाना चाहती थी।

—

जीवन-सौदा

शाहजादा कुतुबुद्दीन मुबारक निकला तो था देश-विदेश घूमने के लिये पर आधे रास्ते ही से दिल्ली लौट आया और संग में लेता आया एक राजपूतनी बाला के भोले रूप की चाह। मुबारक का दिल उचाट-सा रहने लगा—"क्या वह मुझे मिल सकेगी ?"

बादशाह अलाउद्दीन ने बेटे की यह हालत देखी। उसके कठोर चेहरे पर अन्यायियों की सी एक भद्दी मुस्कराहट फैल गई और हृदय में एक आकांक्षा जाग्रत् हुई "जैसलमेर भी मेरे अधिकार में आ जायगा"।

यवन-सेना प्रस्थान करने को तैयार हुई। बादशाह ने सेनापति को बुलाकर धीमे, पर कठोर, स्वर में कहा—"जानते हो, इस युद्ध का विजय-चिह्न क्या होगा ?" सेनापति ने सिर हिलाया। बादशाह ने आगे जोड़ा "अगर बिना युद्ध किए ही राजकुमारी जया को वे लोग सम्मान सहित देने को तैयार हो जायँ तो युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं।" "जो आज्ञा" कहकर सेनापति लौट गया।

× × × ×

यवन-सेना ने चारों ओर से जैसलमेर को घेर लिया।

राजपूतों का खून उबल उठा। नए युवक सम्राट् प्रताप ने लिखकर भेजा—शेरनी को पाने की अभिलाषा करना धृष्टता है—जैसलमेर की एक एक ईंट राजकुमारी की रक्षा के लिये लड़ने को तैयार है।

"भैया, क्या मेरे ही कारण इतना भयंकर युद्ध होगा? एक जीव की रक्षा के लिये हजारों जीव जायँगे!"

"बहन, यहाँ प्राणों का सवाल नहीं है—एक राजपूतनी की इज्जत का सवाल है।" प्रताप की भुजाएँ फड़क उठीं।

"तो मुझे भी ले चलो।"

"राजकुमारी जया, जब तक एक भी राजपूत जिंदा है तब तक तुम्हारी रक्षा होगी। उसके बाद जैसलमेर की ईंटें लड़ेंगी। उनके भी चूर चूर हो जाने पर तुम अपनी रक्षा स्वयं करना।"—एक गंभीर वाणी ने समझाकर कहा। दोनों ने सिर उठाकर देखा—प्रताप का मित्र, जैसलमेर का विजयी वीर सेनापति विजय खड़ा है।

राजपूतों ने केसरिया कपड़े पहिने। स्त्रियाँ अपने पतियों को और बहनें अपने भाइयों को बिदा देने लगीं। राजकुमारी जया कमरे में आकर बैठ गई। उसे लोगों के सामने निकलते लज्जा मालूम पड़ने लगी "छि: इतना राजपूती रक्त मेरे ही कारण बहेगा?" फिर राजपूती खून ने जोर मारा

"एक यवन मुझे पाने की इच्छा रखता है।" वह क्रोधित हो गई और चल दी प्रताप और विजय को युद्ध के लिये बिदा देने।

× × × ×

तलवारें चमक उठीं। जैसलमेर की ऊसर भूमि रक्त से सींची जाने लगी।

सेनापति विजय ने यवनों के छक्के छुड़ा दिए। युद्ध जोरों पर था, पर उस दिन वह कुछ थक सा गया था। इसी बीच में पीछे से उस पर किसी ने वार किया। वह सँभाल न सका; क्योंकि यह धोखे का वार था, कायर का आक्रमण था। गिरने के प्रथम ही एक युवक ने उसे अपने घोड़े पर सँभाल लिया।

युवक की तलवार चमक उठी—"मुबारक, जैसलमेर की राजकुमारी को पाने की आशा करना इतना सरल नहीं है।" घोड़ा सुरक्षित स्थान की ओर बढ़ा। विजय ने कराहकर पूछा—युवक, तुम कौन हो ?

युवक ने मुस्कराकर कहा—"राजकुमारी जया का गुप्त प्रणयी।"

विजय चमक उठा। उसके घावों में असह्य पीड़ा हुई—"अयँ, जया का प्रणयी ?"। उसने युवक के कोमल करों को पकड़कर ऊपर उठाना चाहा—पर उसकी चेतना लुप्त हो गई।

जब विजय को होश आया तो उसने अपने को पलँग पर पड़ा पाया। झुकी हुई राजकुमारी जया उसके घावों को धो रही थी। विजय के घावों में बड़ा दर्द था।

"आह ! कुमारी जया !"

"सेनापति विजय !" जया विजय के निकट आ गई।

"मेरी रक्षा एक युवक ने की है जया। वह बहुत सुन्दर था। मैं उसे चाहने लगा हूँ, क्योंकि जिसे मैं चाहता हूँ—उसे चाहती है जया—" विजय ने जया की ओर बड़े ध्यान से देखा पर उसे घावों को तन्मयता से धोती हुई जया के चेहरे पर कुछ भी भाव न दिखलाई दिए।

× × × ×

यवन-सेना रेगिस्तान में भूखों मरने लगी। बादशाह ने लिखा "लौट आओ—रेगिस्तान को विजय करने से फायदा ही क्या ?" राजपूतों से लोहा लेना सरल काम न था

उस दिन युद्ध का अंतिम दिन था। विजय से न रहा गया। वह भी छिपकर युद्ध-भूमि की ओर चल दिया। पट्टियों का रक्त अभी सूखा भी न था, पर फिर भी जोश था। आशा थी शायद वह अपरिचित युवक पुनः दिख जाय।

यवन-सेना के पैर उखड़ गए। विजय-श्री राजपूतों के हाथ लगी।

थका हुआ सेनापति विजय घोड़े से उतरकर एक पत्थर पर आकर बैठ गया। वह उसी अपरिचित की बातें

सोच रहा था। इतने ही में कोई मधुर स्वर से पुकार उठा "विजयी सेनापति, क्या सोच रहे हो ?" विजय ने उठकर उसे लिपटाना चाहा "जया के प्रणयी !" पर एक दैवी शक्ति ने एक झटके के साथ दोनों को अलग कर दिया। युवक काँप उठा।

"मुझे अपना नाम बताओ।" आग्रह-पूर्वक विजय ने पूछा।

"क्या करोगे जानकर" युवक लापरवाही से बोला।

"पुकारूँगा।"

"किन्तु यह हमारी-तुम्हारी अंतिम मुलाकात है।"

"क्यों वीर ?" विजय थककर बैठ गया। उसके घावों में पट्टी चुभ रही थी।

"सेनापति, ऐसी हालत में तुम्हें निष्ठुर जया ने कैसे आने दिया ?" युवक ने प्रश्न किया और विजय को अपना सहारा देकर बैठा लिया।

"भला जया मुझे क्यों न आने देगी ?" निराशा-पूर्ण शब्दों में विजय ने उत्तर दिया।

'क्योंकि तुम उसे चाहते हो।" उसने ताने के ढङ्ग पर विजय से कहा।

सेनापति को क्रोध आ गया "युवक, सँभल जाओ। तुम जैसलमेर के विजयी सेनापति का मजाक उड़ाते हो !"

युवक ने भी तलवार खींच ली। बोला "मैं भी राजपूत हूँ।" सन्ध्या के कालेपन में दोनों की तलवारें चमक गईं। युवक ने कुछ अटककर कहा—पर सोच लो, मेरे शरीर में एक भी घाव देखकर राजकुमारी जया दुःख से पागल हो जायगी और तुम भी पछताओगे। यदि मुझे कुछ भी हुआ—तो मेरे साथ ही जया की चिता भी धधक जायगी।

सेनापति ने तलवार रोक ली—ओफ युवक! तुम्हारे शब्द कितने कड़वे हैं।

दोनों अपने अपने घोड़ों पर सवार होकर दो भिन्न भिन्न दिशाओं की ओर बढ़े।

× × × ×

विजय मिली, पर जैसलमेर के युवक सेनापति विजय की जीवन-आशा सबने छोड़ दी।

जया रोकर बोली—भैया प्रताप, सचमुच क्या यह विजय इतनी महँगी होगी!

प्रताप का हृदय अपने मित्र के लिये रो उठा।

धीरे से सेनापति ने कहा—"हर एक राजपूतनी के सतीत्व और इज्जत का सौदा इतना ही महँगा होना भी चाहिए।" सेनापति के स्वर में दृढ़ता पर कम्पन था।

उस दिन विजय की अवस्था अधिक खराब थी। एकांत में विजय ने कुमारी जया के हाथों को पकड़ लिया—जैसलमेर की राजकुमारी, मैं उस अपरिचित युवक को

देखना चाहता हूँ—तुम्हारे प्रणयी को—उसी ने युद्ध-भूमि में मेरी रक्षा की थी—मुझे उससे मिला दो जया !

"सेनापति, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने की कोशिश करूँगी ।" जया की आँखों से दो बूँद आँसू विजय के हाथों पर टपक पड़े, पर शीघ्र ही उसके तप्त शरीर की गर्मी पाकर सूख भी गए ।

× × × ×

संध्या को जया के बताए ठीक समय पर वह अपरिचित युवक आया । वह अकेला ही था। विजय जोश में आ गया । वह अपने घावों की सारी पीड़ा भूल सा गया । उसने उठकर युवक को कसकर हृदय से लगा लिया "उस दिन तुम्हीं ने मेरे प्राणों की रक्षा की थी—पर मैं जानता हूँ, आज तुम मुझे मृत्यु से न बचा सकोगे ।" पर चौंककर विजय दो कदम पीछे हटा—हैं ! तुम स्त्री हो ?

"आज भी तुम्हें मैं ही बचाऊँगी ।" कहकर अपरिचित ने अपना मर्दाना भेष उतार दिया ।

विजय थककर बिस्तरे पर गिर पड़ा—"कुमारी जया, अब मैं अच्छा न हो सकूँगा ।" वह गुनगुनाया—"ओफ कितनी पीड़ा है..." वह कराहने लगा ।

"अब तक तुमने जया की रक्षा की थी, अब जया का सतीत्व और प्रेम तुम्हारी रक्षा करेगा ।" वह विजय की खाट का सहारा लेकर बैठ गई ।

बाहर शहनाई बजने लगी।

पंद्रह दिन तक जया भूखी-प्यासी आँखें बंद किए, पत्थर की मूर्ति की तरह, विजय की खाट के पास बैठी रही। उसे पुकारने-की हिम्मत किसी की भी न पड़ी और बाहर शहनाई भी उसी तरह बजती रही। उसे बंद करवाने की हिम्मत किसी की भी न पड़ी।

सोलहवें दिन विजय एकाएक बिस्तरे से उठ बैठा मानों सोकर जागा हो। उसके घावों की पीड़ा बहुत कम हो गई थी। सेनापति ने जया का हाथ पकड़कर उठाया—उठो जया।

जया ने आँखें खोलीं। उसकी आँखों में सतीत्व का तेज था और अग्नि की सी लपटें निकल रही थीं।

देवी जया के प्रेम ने विजय के घावों को शीघ्र ही भर दिया।

× × × ×

हँसकर प्रताप ने फूलों का एक एक गजरा दोनों को पहनाया और जया को चिढ़ाने के ढँग पर कहा "बहिन जया, मेरे मित्र जैसलमेर के सेनापति विजय का सौदा तो तूने खूब सस्ते में निपटाया।" विजय हँसने लगा पर जया बिना कहे न रह सकी—भैया, घबड़ाते क्यों हो? तुम्हारा सौदा भी कोई सस्ते ही में निपटाएगी।

बाहर शहनाई बज रही थी।